ग्रामीण विकास
को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 55 अंक : 9 | जुलाई 2009 | मूल्य : 10 रुपये

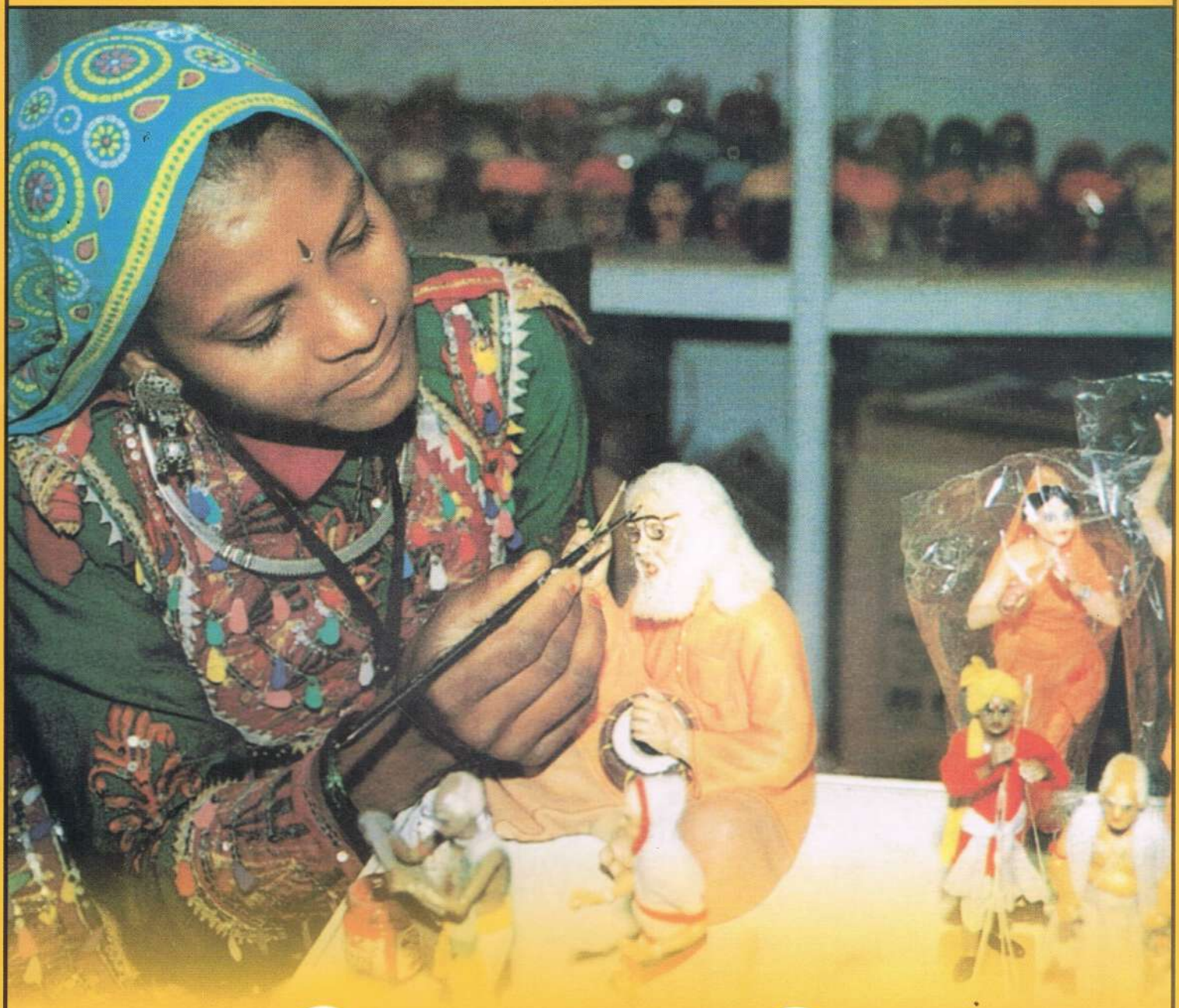

ग्रामीण हस्तशिल्प

अब उपलब्ध है

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

भारत 2009

देश के विकास की
विश्वसनीय और अद्यतन जानकारी के लिए

मूल्य: 345 रुपये

* अर्थव्यवस्था
* विज्ञान और तकनीक
* सामाजिक विकास
* राजनीति
* शिक्षा
* कला और संस्कृति

अपनी प्रति यहां से खरीदें :

हमारे विक्रय केंद्र: • **नई दिल्ली** (फोन 24365610, 24367260) • **दिल्ली** (फोन 23890205) • **कोलकाता** (फोन 22488030) • **नवी मुम्बई** (फोन 27570686) • **चेन्नई** (फोन 24917673) • **तिरुअनंतपुरम** (फोन 2330650) • **हैदराबाद** (फोन 24605383) • **बेंगलूर** (फोन 25537244) • **पटना** (फोन 2683407) • **लखनऊ** (फोन 2325455) • **गोवाहाटी** (फोन 26656090) • **अहमदाबाद** (फोन 26588669)

प्रतियां प्रमुख पुस्तक केन्द्रो में भी उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
फोन. 011–24365610, 24367260, फैक्स: 24365609

ईमेल: dpd@mail.nic.in
dpd@sb.nic.in
वेबसाइट: www.publicationsdivision.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

DPDB-II-09/2

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

कुरुक्षेत्र

वर्ष : 55 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48, आषाढ़–श्रावण 1931, जुलाई 2009

प्रधान संपादक
नीता प्रसाद

वरिष्ठ सम्पादक
कैलाश चन्द मीना

सम्पादक
ललिता खुराना

संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक, **कुरुक्षेत्र**
कमरा नं. 655, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

उत्पादन अधिकारी
जे.के. चन्द्रा

व्यापार प्रबंधक
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

◆ हस्तशिल्प कला से रोजगार	हेमा गांधी	3
◆ बरेली की हस्तशिल्प कलाएं	डॉ. बृजमोहन सिंह एवं डॉ. प्रीति गुप्ता	7
◆ मथुरा की मूर्तिकला	डॉ. उमाशंकर दीक्षित	10
◆ बदलते दौर में हस्तकला	डॉ. सुधीश कुमार पटेल	13
◆ केन का कलात्मक सौन्दर्य	पूनम	18
◆ आदिशिल्प का गढ़ बस्तर	एल. मोहन कोठियाल	21
◆ नए मंत्रियों ने संभाला ग्रामीण विकास मंत्रालय का कार्यभार		24
◆ प्रतिभा के धनी सोमपुरा शिल्पकार	डॉ. अलका रस्तौगी 'अनु'	26
◆ मृत्तिका पात्र उद्योग: समस्या व समाधान	डॉ. जयशंकर मिश्र	29
◆ हस्तशिल्प उद्योग के समक्ष चुनौतियां	डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी	33
◆ मूंगफली की वैज्ञानिक खेती मुनाफे का सौदा	डॉ. बी. गगंय्या	38
◆ हिमालय में कैंसररोधी जड़ी-बूटियां	डॉ. मायाराम उनियाल	43
◆ खुशीराम बना गांव की खुशहाली का जनक	रामचरण धाकड़	47

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

हस्तशिल्प प्राचीनकाल से ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रहे हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य की संकल्पना में हस्तशिल्प और ग्रामोद्योग ही अर्थरचना के आधार थे। इस समय देश में एक अनुमान के अनुसार 50 लाख से अधिक शिल्पकार हैं और 15 लाख से अधिक हस्तशिल्प इकाईयां कार्यरत हैं। इनमें से अधिकांश इकाईयां असंगठित क्षेत्र से हैं। यानी अधिकांश शिल्पकार अपने ही घरों से अपना व्यवसाय चलाते हैं। कुल मिलाकर यह परिवार केंद्रित व्यवसाय है। हस्तशिल्प अब भारत सरकार के वस्त्र मंत्रालय के अंतर्गत है। शिल्प और शिल्पकारों का विकास इसका एक प्रमुख आयाम है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हस्तशिल्प को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए गए। भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में हस्तशिल्प बोर्ड स्थापित किया। इसी दौरान सिल्क बोर्ड, नारियल जटा बोर्ड, ग्रामोद्योग बोर्ड, हथकरघा बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड भी स्थापित किए गए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में खादी और ग्रामोद्योग आयोग स्थापित किया गया। यह आयोग कुम्हारी, बढ़ईगिरी, चर्म सामग्री आदि से संबद्ध कार्यों को बढ़ावा देता है। हस्तशिल्प विकास के लिए सरकार की ओर से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। 'नगरीय हाट' हस्तशिल्प उत्पादों की बिक्री को बढ़ावा देने की उपयोगी योजना है। वर्ष 2001–02 से शुरू अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना के माध्यम से भी शिल्पकारों को अपनी विधा में सक्रिय उद्यमी बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

हाल के वर्षों में हस्तशिल्प की प्रगति उल्लेखनीय रही है। हस्तशिल्प क्षेत्र से जहां 1997–98 में 6458 करोड़ रुपये का सामान निर्यात किया गया वहीं 2006–07 में लगभग 17 हजार करोड़ रुपये का निर्यात हुआ। हालांकि विश्व स्तर पर आर्थिक मंदी की मार इस उद्योग पर भी पड़ी है और इसके निर्यात में गिरावट दर्ज की गई है। अमेरिका भारत के हस्तशिल्प उत्पादों का सबसे बड़ा खरीदार है। इसके अलावा ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा, इटली, जापान, नीदरलैंड, स्विट्जरलैंड और आस्ट्रेलिया हस्तशिल्प उत्पादों के प्रमुख खरीदार हैं। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में हस्तशिल्प से निर्यात बढ़ाने के बड़े लक्ष्य रखे गए हैं। हाल के वर्षों में हस्तशिल्प क्षेत्र में रोजगार काफी तेज गति से बढ़े हैं। एक अनुमान के अनुसार हस्तशिल्प से लगभग 70 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त होता है।

वर्तमान में हस्तशिल्प उद्योग को घरेलू और विदेशी बाजार में गंभीर प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। हस्तशिल्प श्रमप्रधान उद्यम रहा है और यही इसकी सुंदरता और विशिष्टता भी है। परंतु बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पूंजी प्रधान बनाकर हस्तशिल्प के स्वरूप को विकृत कर रही हैं और मशीननिर्मित उत्पादों को इनकी स्पर्धा में उतार रही हैं। इन मशीन निर्मित उत्पादों की प्रति इकाई कीमत कम होने के कारण बिक्री अधिक है और उसके सामने हस्तशिल्प पिछड़ रहे हैं। ऐसे में यह बेहद जरूरी है कि हस्तशिल्प के नाम पर विदेशों से आने वाले एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मशीन निर्मित उत्पादों को बाजार में प्रवेश करने से रोकने के उपाय किए जाएं।

आज ग्रामीण हस्तशिल्प पारम्परिकता से व्यावसायिकता की ओर अग्रसर है जिसमें प्रशिक्षण, संसाधन एवं विपणन जैसे महत्वपूर्ण कार्य शामिल हैं। आज जरूरत इस बात की है कि हस्तशिल्प का संगठित विकास सुनिश्चित किया जाए। जनसंचार माध्यम इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। हस्तशिल्पियों के प्रोत्साहन के लिए सरकार को उनको ऋण आदि की बेहतर सुविधाएं सुनिश्चित करनी चाहिए। साथ ही सरकार द्वारा जारी कल्याणकारी योजनाओं का लाभ शिल्पियों तक पहुंचे, यह सुनिश्चित करना बेहद जरूरी है।

हस्तशिल्प कला से रोजगार

हेमा गांधी

भारत में कोई ऐसी कला विद्यमान है जिसका गौरव कभी कम नहीं हुआ तो वह है हस्तशिल्प कला। इसका जादू हमेशा जनसाधारण के सिर चढ़कर बोला है। हस्तशिल्प कला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हुए अपना अस्तित्व बरकरार रखे हुए है। परंपरागत कला के रूप में प्रसिद्ध हस्तशिल्प ही ऐसा क्षेत्र है जहां कलाकार अपने चिंतन, मनोभावों और कल्पनाशीलता को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है। यही नहीं बल्कि हस्तशिल्प गांवों में एक बड़े तबके को रोजगार मुहैया कराने का भी जरिया है।

प्राचीन स्थलों की खुदाई से प्राप्त अवशेषों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय हस्तशिल्प कला अत्यन्त समृद्ध थी। मृत्भाण्ड, मिट्टी की मूर्तियां, धातु शिल्प, भोजन पात्र आदि ऐसे अनेक उत्पाद खुदाई के दौरान मिले हैं जो शुंग, हूण और गुप्तकालीन हस्तशिल्प कला के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हैं। इन अवशेषों को देखकर हस्तशिल्प उत्पादों में ज्यामीतिय पद्धति की विशिष्टता का ज्ञान भी होता है किन्तु समय बीतने के साथ ही ज्यामीतिय पद्धति लुप्त होती चली गई और हस्तशिल्प में आधुनिकता का समावेश होता चला गया।

आधुनिक समय में धातु, काष्ठ, वस्त्र, कागज, मिट्टी, सिरेमिक, वनस्पति, पत्थर से निर्मित हस्तशिल्प उत्पादों की धूम पूरे विश्व में है। भारतीय हस्तशिल्प की ओर आकर्षित होकर विदेशी लोग स्थानीय बाजारों, हाट बाजारों और शिल्प प्रदर्शनियों का रुख करते देखे जा सकते हैं। भारतीय लोगों का तो हस्तशिल्प के प्रति आकर्षण हमेशा से ही रहा है। यही कारण है कि हस्तशिल्प के क्षेत्र में रोजगार की असीम संभावना मौजूद है। आवश्यकता है तो इस क्षेत्र में आकर अपनी कल्पनाओं को पंख लगाने की। बंगाली बाबू के नाम से प्रसिद्ध हस्तशिल्प कला साधक दीपक मुखर्जी से मिलकर यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में सन्तुष्टि और समृद्धि का समन्वय विद्यमान है। बातचीत के दौरान वे स्वयं ही कहते हैं– क्या परंपरागत चीजों, कलाकृतियों को आधुनिकता निगल जाती है? शायद हां और शायद नहीं? किंतु–परंतु हम –आप लगा सकते हैं

लेकिन जिसके हाथ में हुनर होता है, जिसमें कला को संजोने की इच्छाशक्ति होती है उसका सीधा जवाब होगा–नहीं। बल्कि परंपरागत चीजों को नित नया रूप देना तो नई कला को जन्म देने जैसा है। यह बात और है कि कभी–कभी ज्यादा चमक–दमक दिखाने की होड़ में कलाकार का मन व्यथित हो सकता है।

श्री मुखर्जी ने मिट्टी और बेकार पड़ी वस्तुओं से ऐसी चीजें बनाई हैं जिनकी धूम आज देश–विदेश में मची हुई है। इससे उन्हें अपार यश और धन प्राप्त हुआ है। इन्हें कई प्रकार की कलाकृतियों से प्रसिद्धि मिली है, जिनमें पेंटिंग आन टेराकोटा, ग्लेस टेराकॉट, जूट, ड्राई फ्लावर, एंटीक, विदेशों में सूखे फूल–पत्तियों से बनी वस्तुओं और कलात्मक दीयों की मांग हमेशा बनी रहती है। सड़कों पर पड़े सूखे फूल–पत्तियों में रंग भरकर एक से एक मनोहारी वस्तु बनाई जा सकती है। इसके अलावा जूट, धातु और लकड़ी पर नक्काशीदार कलाकृतियों को अच्छा बाजार मिल रहा है।

पिछले दिनों सूरजकुण्ड में आयोजित शिल्प मेले में चन्देरी सिल्क साड़ियों, प्राकृतिक रंगों से रंगे सूट–सलवार और टसर सिल्क के कशीदाकारी युक्त परिधानों के प्रति लोगों की दीवानगी देखकर इस क्षेत्र के व्यापारिक उज्जवल भविष्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसके अलावा, बुटीक शिल्प, लेदर शिल्प, बाघ प्रिन्ट, पेचवर्क पेंटिंग, स्टोन क्राफ्ट, बेल मेटल और गोंड पेंटिंग का जादू भी लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा था। सिरेमिक पेंटिंग ने खरीददारों को खूब जेब ढीली करने को मजबूर किया। चाहे मोबाइल होल्डर हो या पेन होल्डर तथा घरों में टांगने वाली घंटियां हों या गुलदस्ते, हर वस्तु के खरीददारों की भीड़ देखी जा रही थी जिससे इन हस्तशिल्प उत्पादों का व्यापारिक महत्व ज्ञात होता है।

> 12 राज्यों में कार्यरत ऐसे 20 संस्थानों में दो लाख से अधिक युवा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार उद्यम स्थापित करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। अगले एक वर्ष में इस प्रकार के 100 संस्थान स्थापित करने की योजना पर काम चल रहा है। करार के अनुसार राज्य सरकार ऐसे संस्थानों के लिए जमीन मुहैया कराएगी और योजना आयोग प्रत्येक जिले को इस शर्त पर एक करोड़ रुपये का प्रारंभिक अनुदान देगा कि उसमें 70 प्रतिशत युवा ग्रामीण पृष्ठभूमि से और गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों से हों।

इनके अलावा और भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें रोजगार के साथ–साथ प्रसिद्धि भी प्राप्त होती है। ताराकशी की कारीगरी के माध्यम से पीतल की तार से लेकर लकड़ी के ऊपर कोई भी जैसे राधा–कृष्ण, गणेश, शिव, दुर्गा आदि देवी–देवताओं, प्राकृतिक दृश्यों और यहां तक कि स्वयं अपनी भी तस्वीर बनाई जा सकती है। इस ताराकशी की कला के माध्यम से सेंटर टेबल, चौकी और फोटोफ्रेम जैसी कलात्मक वस्तुएं तैयार की जा सकती हैं जिनकी कीमत 250 रुपये से लेकर 15,000 रुपये तक होती है। पीतल के अलावा यकीनन चांदी में भी हुस्न होता है। चांदी के तार से जो शिल्प गढ़ा जाता है, वह किसी की भी आंखों को चुंधिया सकता है। इस कला को सिल्वर फिजरी कहा जाता है। इस कला द्वारा निर्मित आभूषणों के सामने सोने के आभूषण भी फीके नजर आते हैं। सिल्वर फिजरी कला के माध्यम से आभूषण बनाने के लिए किसी भी प्रकार के सांचे का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। इस कला द्वारा लुभावने डिजाइनों में कानों के टॉप्स, झुमके, चांदी की बिन्दी, गले की चेन, हार, पेण्डल, श्रृंगारदानी, देवी–देवताओं की मूर्तियां, धार्मिक चिह्न आदि बनाए जा सकते हैं।

सोने–चांदी के आभूषण तो देखने–सुनने में आते ही रहते हैं, लेकिन हस्तशिल्प का एक आश्चर्य सुनकर निश्चित रूप से सभी को हैरत होती है। आश्चर्य यह है कि वेस्ट पेपर को रिसाइकिल करके उससे आकर्षक ज्वैलरी बनाई जा सकती है। खास बात यह है कि अलग–अलग रंगों और डिजाइनों में बनी यह ज्वैलरी पानी में भीगने पर भी खराब नहीं होती। दो मिनट पंखे की हवा लगने के बाद सूखते ही यह फिर से नई जैसी दिखाई देने लगती है। एक नजर में देखने पर कोई कह ही नहीं सकता कि इसे पेपर को रिसाइकिल करके तैयार किया गया है। इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह इको–फ्रेंडली होने के साथ–साथ एंटी एलर्जिक भी है। इसे तैयार करने के लिए प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल किया जाता है। रंग हल्के न पड़ें, इसके लिए पेपर रिसाइकिल करते समय ही इसमें रंगों का मिश्रण कर दिया जाता है। रंगों के साथ रिसाइकिल होने के बाद इनको अलग–अलग डिजाइन दिया जाता है। डिजाइनों को आकर्षक बनाने के लिए स्टोन का भी इस्तेमाल किया जाता है। इस कला के द्वारा टॉप्स, नेकलेस, अंगूठी, कड़े आदि बनाए जाते हैं जिनकी कीमत 110 रुपये से लेकर 7,000 रुपये के बीच रखी जा सकती है।

हस्तशिल्प कला के क्षेत्र में इंडोनेशियाई कला ने कारोबारी दृष्टि से बहुत सफलता अर्जित की है। इंडोनेशियाई कला बुटिक को भारत में आकर ऐसा रंग मिला कि यह रंगों से सराबोर हो उठी। रवींद्रनाथ टैगोर के समय में भारत पहुंची, इस कला को यहां के कारीगरों ने ऐसा रूप दिया कि विश्व स्तर पर इसने अपनी एक अलग पहचान बनाई। शुद्ध कॉटन के कपड़ों में जब इस कला के

जरिए रंग भरे जाते हैं तो वह इतने आकर्षक हो जाते हैं कि इनको देख दूर से ही लोग खिंचे चले आते हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर के समय में यह कला हमारे देश में दिखाई दी थी। उस समय सिर्फ एक या दो रंगों का ही इस्तेमाल इसमें किया जाता है, लेकिन हमारे यहां के शिल्पकला के जादूगरों ने इसमें इतने रंग भरे कि पूरी कला ही रंगीन हो उठी। आज मल्टी कलर का इस्तेमाल इसको तैयार करने में किया जाता है। शुद्ध कॉटन के कपड़े पर पहले मोम को गर्म कर आउटलाइन की जाती है। इसके बाद प्राकृतिक रंगों से इनको सजाया जाता है। प्राकृतिक रंग भी मौसम में ही तैयार किए जाते हैं अर्थात् धूप की गर्मी में यह रंग तैयार होते हैं, जिससे यह रंग अपनी अलग ही पहचान बना लेता है।

इसके चलते इसमें दो खासियत हो जाती हैं, एक तो यह दूर से ही चमकता है और दूसरा, पुराना होने के बाद भी यह अपनी चमक नहीं खोता। इस कला के जरिए किसी भी प्रकार के पीस को बनाने में एक सप्ताह से ज्यादा का समय लग जाता है। इंडोनेशियाई कला द्वारा निर्मित कुर्ते की कीमत 360 रुपये, टॉप 180 रुपये, कुर्ता मैटेरियल 475 रुपये, साड़ी 3200 रुपये तक और सूट 1200 रुपये तक का है। इस कला के जरिए वॉल पेंटिंग भी तैयार की जाती है, जिसकी कीमत 500 रुपये से तीन हजार रुपये तक है।

साड़ियों और सूटों पर बनारसी कला की छटा कोई नई नहीं है। यह शुरू से ही उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करती आ रही है। पहले बनारसी कढ़ाई की कला का उपयोग केवल साड़ियों पर ही किया जाता था किन्तु बाजार में जिस तेजी से प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, उसे देखते हुए जरूरी था कि साड़ी के अलावा भी इस हस्तशिल्प कला को कहीं पर इस्तेमाल किया जाए। इसके लिए नए तरीके ईजाद हुए, कई प्रयोग हुए और आखिर में बनारसी सूट और बेडशीट की मांग बहुत तेजी से बढ़ रही है। इस समय बनारसी सूट की कीमत 1,250 रुपये से लेकर 7,500 रुपये तक है और बेडशीट 1,000 रुपये से 2,500 रुपये के बीच बिकती है।

हस्तशिल्प कला के समन्दर में चन्देरी कला का जादू भी मौजूद है जिसे लोग खूब पसन्द कर रहे हैं। चन्देरी कला को अब किसी पहचान की जरूरत नहीं है। यह कला आज न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को भी लांघ चुकी है। चन्देरी कला में सिल्क और कॉटन को मिलाकर जो कपड़ा तैयार किया जाता है, उस पर हाथ से कढ़ाई करके अलग–अलग प्रकार के डिजाइन बनाये जाते हैं। चन्देरी साड़ी और सूटों की कीमत 350 रुपये से लेकर 20,000 रुपये के बीच रहती है।

पिछले कई वर्षों से अलादीन का चिराग हस्तशिल्प प्रेमियों को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर रहा है जिसके कारण शिल्पकार अच्छा लाभ अर्जित कर रहे हैं। ऐसा माना जाता है कि जहां भी यह चिराग जलाया जाता है, वहां सकारात्मक ऊर्जा का उत्सर्जन और प्रसारण होने लगता है। इस चिराग से निकली ऊर्जा के कारण व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है और इस प्रकार यह किसी अलादीन के चिराग से कम नहीं है। तांबे के चिराग पर चांदी की परत चढ़ाई जाती है। इसके साथ ही इस पर सुंदर कशीदाकारी भी देखने को मिलती है जो मिस्र की लोककला को दर्शाती है।

इस चिराग की कीमत चौदह सौ रुपये है। इसमें घी अथवा तेल कुछ भी प्रयोग किया जा सकता है। एक बार ईंधन डालने के बाद यह चिराग पूरी रात जलता है। देखने में बेहद आकर्षक यह चिराग

बेशक बल्ब जैसी रोशनी न देता हो लेकिन इससे निकलने वाली सकारात्मक ऊर्जा अनंत है। इस चिराग का वास्तु में प्रयोग किया जाता है। मिस्र के हर घर में इस प्रकार के चिराग मिलते हैं। ऐसा माना जाता है कि जहां यह चिराग होता है, वहां पर सुख–संपन्नता का स्थायी वास होता है। इससे निकलने वाली रोशनी की किरण घर के वास्तुदोष खत्म कर देती है। इसके अलावा परिवार में आनन्द–प्रेम भी यह बढ़ाती है। युवा एक–दूसरे को यह चिराग भेंट में देकर रिश्तों में नई रोशनी पैदा कर सकते हैं।

पूरी दुनिया में प्रसिद्ध थाइलैण्ड की हस्तकला का जादू लोगों के सिर चढ़कर बोलता है। इस कला के माध्यम से हाथ से बने कागज के ग्रीटिंग कार्ड और दिल के आकार वाली उपहार की वस्तुएं भारत में प्रसिद्धि प्राप्त कर रही हैं। थाइलैण्ड की क्राफ्ट ज्वैलरी महिलाओं को आकर्षित करती है जिनकी भारत में कीमत 50 रुपये से लेकर 19,000 रुपये तक है। हाथ से बने कागज के ग्रीटिंग कार्ड प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए बहुत उम्दा होने से युवाओं में अपनी विशेष पैठ बना चुके हैं जिनकी कीमत 20 से 30 रुपये के बीच रहती है। इसके अलावा थाइलैण्ड हस्तशिल्प से निर्मित फोटो फ्रेम, पामलीफ के फूल, हैण्डमेड लाइट्स की भारत के बाजारों में अच्छी मांग है।

अभी तक विचार इस बात पर किया जा रहा था कि हस्तशिल्प के क्षेत्र में प्रवेश करके रोजगार की संभावनाओं का दोहन किया जा सकता हैं किन्तु मात्र बेचने या निर्णय कर लेने भर से ही बात नहीं बनती। किसी भी काम को शुरू करने के लिए ज्ञान और धन की आवश्यकता होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में हस्तशिल्प की संभावनाओं और ग्रामीण युवाओं को रोजगार देने की नीति के तहत सरकार ने प्रशिक्षण प्रदान करने का बीड़ा उठाया है। इसके लिए केंद्र सरकार ने देश के सभी जिलों में ग्रामीण विकास एवं रोजगार प्रशिक्षण देने की योजना बनाई है। इसके लिए 12 राज्यों में कार्यरत ऐसे 20 संस्थानों में दो लाख से अधिक युवा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार उद्यम स्थापित करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। अगले एक वर्ष में इस प्रकार के 100 संस्थान स्थापित करने की योजना पर काम चल रहा है। करार के अनुसार राज्य सरकार ऐसे संस्थानों के लिए जमीन मुहैया कराएगी और योजना आयोग प्रत्येक जिले को इस शर्त पर एक करोड़ रुपये का प्रारंभिक अनुदान देगा कि उसमें 70 प्रतिशत युवा ग्रामीण पृष्ठभूमि से और गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों से हों।

इसके अलावा पहले से ही हस्तशिल्प संबंधी प्रशिक्षण खादी ग्रामोद्योग आयोग के अलावा कई हस्तशिल्प प्रशिक्षण संस्थान भी प्रदान करते हैं। वैसे ज्यादातर शिल्पकार अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि में ही प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए कौशल विकास कर लेते हैं। देश के राष्ट्रीयकृत बैंक और जिला उद्योग केंद्र स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेल : hemagandhi@yahoo.com

बरेली की हस्तशिल्प कलाएं

डॉ. बृजमोहन सिंह एवं डॉ. प्रीति गुप्ता

सृजनात्मकता मनुष्य का जन्मजात गुरु है। मनुष्य ने अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति और क्षमता के बल पर अनेक कलाओं को जन्म दिया। हस्तशिल्प कला भी इनमें से एक है। भारत अपनी हस्तशिल्प कलाओं के लिए विश्वभर में जाना जाता है। उत्तर प्रदेश का जनपद बरेली भी अपनी हस्तशिल्प कलाओं के लिए प्रसिद्ध है। इस लेख में बरेली की हस्तशिल्प कलाओं का जिक्र किया गया है।

बरेली का हस्तशिल्प उद्योग दस्तकारों की कड़ी मेहनत, कौशल एवं पेशे से जुड़ी निष्ठा का सम्मिलित परिणाम है। उत्तर प्रदेश का जनपद बरेली (रूहेलखण्ड) जिसे रूहेला सरदारों की राजधानी भी कहा जाता था, का एक अहम स्थान है जहां की ग्रामीण हस्तशिल्प कलाएं निम्न प्रकार से हैं:–

- लकड़ी का फर्नीचर
- बेंत की वस्तुएं
- पतंग एवं मांझा
- बांसुरी निर्माण
- जरी का काम

लकड़ी का फर्नीचर

जब से मनुष्य प्रकृति की गोद में आया, तभी से उसे किसी न किसी रूप में प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य धरोहर–लकड़ी का सहारा लेना पड़ा है, चाहे उसने लकड़ी को घर बनाने में प्रयुक्त किया हो या फिर आत्मरक्षा का साधन बनाया हो । प्रारम्भ में इस परम्परा को रूहेलखण्ड क्षेत्र के निवासियों ने अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपनाया। धीरे–धीरे यहां के व्यक्तियों ने लकड़ी का सहारा अपनी कलात्मक सोच को प्रकट करने के लिए किया किन्तु दैनिक आवश्यकताओं की अवहेलना भी नहीं की जा सकती थी। अतः यहां के लोगों ने लकड़ी की मदद से ऐसी कलात्मक वस्तुएं बनानी प्रारम्भ की जो उपयोगी भी थी। ऐसी वस्तुओं में फर्नीचर का स्थान सर्वोपरि था। लकड़ी के फर्नीचर की कला ने बरेली (रूहेलखण्ड) क्षेत्र में अपना पूर्ण यौवन प्राप्त कर सम्पूर्ण भारत में ख्याति प्राप्त की।

बरेली शहर शीशम,साल, सागौन, इत्यादि की लकड़ी से निर्मित फर्नीचर के कारण देश में एक विशिष्ट स्थान रखता है। देश का सम्भवतः कोई ही ऐसा भाग हो जो बरेली में निर्मित फर्नीचर से परिचित न हो। बरेली महानगर के जगतपुर, सिकलापुर, पुराना शहर तथा आजमनगर इलाकों के हजारों कारीगर फर्नीचर निर्माण की कला से जुड़े हैं। दस–बारह वर्ष की आयु के बालकों से लेकर वृद्ध वर्ग तक के लोग इस व्यवसाय में देखे जा सकते हैं। इतना अवश्य है कि उम्र की विभिन्न अवस्थाओं को पार करने के साथ–साथ कारीगरों की कुशलता में निरन्तर निखार आता जाता है। बरेली में निर्मित फर्नीचर अपनी मजबूती व खूबसूरती के कारण सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध है। मजबूती के अतिरिक्त बरेली के फर्नीचर की प्रमुख कलात्मक विशेषता है–नक्काशी। फर्नीचर की यह विशेषता अन्यत्र शायद ही देखने को मिले। कुशल कारीगर सबसे पहले लकड़ी के टुकड़ों पर पेंसिल या स्टैंसिल की सहायता से डिजाइन अंकित करते हैं, फिर अंकित डिजाईन पर छेनी और हथौड़ी की सहायता से नक्काशी करते हैं। नक्काशी का विषय सुन्दर बेल–बूटे, पशु–पक्षी, मानवकृतियां इत्यादि होती हैं। यहां के फर्नीचर की एक अन्य विशेषता है –जालीदार पारदर्शी नक्काशी। इस नक्काशी के प्रथम चरण में भी लकड़ी के टुकड़े पर स्टैन्सिल या पेंसिल की सहायता से आकृति अंकित की जाती है। तदोपरान्त एक विशेष प्रकार की मेजनुमा मशीन की सहायता से आकृति पर पारदर्शी नक्काशी की जाती है। इस तरह की नक्काशी से युक्त फर्नीचर की छटा देखते ही बनती है।

नक्काशी के उपरान्त फर्नीचर पर विशेष रूप से तैयार की गई वार्निश से पॉलिश की जाती है। बरेली में बनाए जाने वाले फर्नीचर के अन्तर्गत सोफा, मेज, कुर्सी, अलमारियां, श्रृंगार मेज, पलंग, झूले व सजावटी सामान इत्यादि का प्रमुख स्थान है। कच्चे सामान के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली लकड़ी की आपूर्ति निकटस्थ पहाड़ी क्षेत्रों से होती है। बरेली में निर्मित फर्नीचर की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है। यहां का फर्नीचर देश के लगभग हर हिस्से में भेजा जाता है, तथा विदेशों में भी इसकी मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है।

बेंत की वस्तुएं

बरेली में निर्मित बेंत की लकड़ी का सामान अपनी उपयोगिता और सुन्दरता के कारण दूर–दूर तक प्रसिद्व है। बेंत की वस्तुओं के निर्माण में नगर के सैंकड़ों कारीगर संलग्न हैं। इस कला के केन्द्र में स्थित पुराना शहर एवं आजमनगर क्षेत्र है। बेंत की वस्तुएं बनाने का अपना विशिष्ट तरीका है। सर्वप्रथम बेंत को छीलकर साफ किया जाता है। इसके उपरान्त बेंत को आंच पर गर्म करके विभिन्न आकारों में मोड़ा जाता है। कम मोटाई का बेंत बिना आंच की सहायता से मोड़ा जा सकता है। इसके उपरान्त बेंत के विभिन्न टुकड़ों को कोई विशेष आकृति प्रदान करते हुए कीलों की मदद से आपस में जोड़ा जाता है। अमुक वस्तु को अधिक मजबूती प्रदान करने हेतु जोड़ों पर बेंत के तारों से कलात्मक बुनाई की जाती है। तदोपरान्त चमकीली पॉलिश करके निर्मित वस्तु को अन्तिम रूप दिया जाता है। बरेली में निर्मित बेंत की वस्तुओं में कुर्सियां, मेज, सोफा, रैक, गमला–स्टैण्ड, विविध प्रकार के शोपीस, झूले इत्यादि का प्रमुख स्थान है। यह बेंत की वस्तुएं वजन में हल्की, मजबूत तथा अत्यन्त सुन्दर होती हैं। बरेली नगर में बेंत की वस्तुओं की बिक्री के लिए शहर के मध्य शालीमार बाजार, शहमतगंज, राजेन्द्र नगर, सिविल लाईन में बाजार स्थित है। बरेली में निर्मित बेंत का सामान भारत के विभिन्न राज्यों में भेजा जाता है। कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होने वाले बेंत की आपूर्ति मुख्यतः असम राज्य से होती है।

पतंग एवं मांझा उद्योग

जब मनुष्य का मन अत्यधिक प्रफुल्लित होता है, तब वह अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए नाना प्रकार के उद्यम करता है। इसी प्रकार का एक उद्यम है–पतंगबाजी। भारतवर्ष में पतंगबाजी का शौक लोगों में किस सीमा तक है इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि विभिन्न प्रान्तों में भिन्न अवसरों पर पतंग–

बाजी की बड़ी–बड़ी प्रतियोगिताओं का आयोजन विश्व स्तर पर किया जाता है। यहां की पतंगें एकरंगीय तथा बहुरंगीय दोनों ही प्रकार की बनाई जाती हैं। जहां तक पतंगों की आकृति का प्रश्न है बरेली में चौकोर पतंगों के अतिरिक्त मानवाकृति, पशु आकृति, तारा आकृति, विभिन्न देवी–देवताओं के प्रतीक चिन्ह आदि में भी पतंगें बनाई जाती हैं। बरेली की पतंगों की एक विशेषता यह है कि यहां की पतंगें अत्यन्त हल्की एवं सन्तुलित होती हैं। पतंगबाजी में पतंग के साथ–साथ मजबूत मांझे का प्रयोग भी किया जाता है। यद्यपि देश के कई हिस्सों में पतंग व मांझे का निर्माण किया जाता है लेकिन बरेली में निर्मित पतंग एवं मांझा अपनी गुणवत्ता तथा बनावट के कारण पूरे देश में लोकप्रिय हैं। रूहेलखण्ड में पतंग एवं मांझा बनाने की कला को मात्र व्यवसाय के रूप में ही नहीं अपनाया गया वरन् इसके द्वारा लोकभावनाओं को भी जाग्रत करने का प्रयास किया गया है जिसके फलस्वरूप यह कला इस क्षेत्र में एक हस्तकला के रूप में विकसित हुई। मांझा निर्माण बरेली नगर के क्षेत्र जगाती, रेती, जसोली मोहल्लों में बहुतायत से होता है, जिसमें लगभग आठ से दस वर्ष की आयु से लेकर बुजुर्ग तक लगे हुए हैं जिससे सैंकड़ों परिवारों को रोजगार प्राप्त होता है। मांझा बनाने के लिए दो लकड़ी की बल्लियों को आमने–सामने जमीन में एक सीध में गाढ़ा जाता है जिस पर पतला सूती धागा लपेटकर महीन पिसे हुए शीशे व रंग में एक विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ मिलाकर तैयार लेप से कपड़े की सहायता से धागों पर लगाया जाता है। यही धागा सूखकर मांझे का रूप लेता है। बरेली का मांझा अपनी बारीकी तथा तीखी धार के लिए पूरे भारतवर्ष में प्रसिद्व है।

बांसुरी निर्माण

भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य ने विभिन्न प्रकार की कलाओं को जन्म दिया। इन्हीं कलाओं में एक थी संगीत कला। संगीत में हुए विकास के साथ अनेक वाद्ययन्त्रों का अविष्कार हुआ, जिनमें बांसुरी का एक विशिष्ट स्थान था। बांसुरी एक ऐसा वाद्य है जिसको बजाने तथा बनाने दोनों में कला की भूमिका है। रूहेलखण्ड क्षेत्र के पीलीभीत नगर में बांसुरी बनाने की कला को उसके पूर्ण यौवन में देखा जा सकता है । यहां की बनी बांसुरियां भारतवर्ष के लगभग समस्त हिस्सों में बिक्री के लिए भेजी जाती हैं। पीलीभीत नगर के लगभग 3500 लोग बांसुरी बनाने की कला से जुड़े हुए हैं। बांसुरी को बनाने में बांस, तुर, अरहर की लकड़ी तथा रंग आदि प्रयुक्त होते हैं। कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त बांस का आयात मुख्यतः असम राज्य से किया जाता है।

बांसुरी को बनाने के लिए कारीगर सबसे पहले बांस के टुकड़े के भीतरी तथा ऊपरी भाग की सफाई करते हैं। इसके बाद बांस के एक सिरे को ठीक उसी प्रकार काटा जाता है, जिस प्रकार कलम का सिरा छिला जाता है। बांस के आड़े छिले हुए सिरे को और तुर अरहर की लकड़ी से निर्मित एक आड़ा कटा हुआ विशेष प्रकार का टुकड़ा इस प्रकार से लगाया जाता है कि इसके तथा बांस के मध्य में एक पतली सी दरार बनी रहे। इसके चरण में बांस में अनेक गोलाकार छिद्र बनाए जाते हैं, जिनकी सहायता से सुरों को नियन्त्रित किया जाता है। अन्त में बांस पर चमकीला रंग लगाकर बांसुरी को पूर्णता प्रदान की जाती है। पीलीभीत में निर्मित बांसुरियां काले तथा पीले रंगों में होती हैं। यह बांसुरियां सुरीला स्वर तो उत्पन्न करती ही हैं, साथ ही साथ यह देखने में भी अत्यन्त मनोहर होती हैं।

जरी उद्योग

आकर्षक वस्त्र धारण करना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आकर्षक वस्त्रों में जरी की कढ़ाई से युक्त परिधान विशेष स्थान रखते हैं। इसलिए इसे 'जरी नगरी' कहा जाता है। बरेली जिला जरी की कढ़ाई के लिए न केवल सम्पूर्ण देश में वरन् दूसरे देशों में भी लोकप्रिय है। बरेली में जरी की कढ़ाई मुख्यतः दुपट्टों, कुर्तों, चुन्नियों तथा साड़ियों और वैवाहिक वस्त्रों पर की जाती है। सर्वप्रथम कारीगर कपड़े पर स्टैंसिल की सहायता से डिजाइन छाप लेते हैं। इसके बाद कपड़े को लकड़ी से निर्मित एक चौकोर फ्रेम पर खींचकर तान दिया जाता है। अगले चरण में कारीगर एक विशेष प्रकार की नुकीली सुई में धागा डालकर डिजाइन के ऊपर कढ़ाई करते हैं। प्रायः एक डिजाइन में कई रंगों के धागों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए कारीगर को एक ही डिजाइन पर अलग–अलग रंग के धागों से अनेक बार कढ़ाई करनी पड़ती है। कढ़ाई के लिए प्रयुक्त धागों में जरी, कसाव व रेशम के धागे प्रमुख होते हैं।

ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग भारत के कोने–कोने में किसी न किसी रूप में आज अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। स्थानीय स्तर पर कच्चे माल एवं कारीगरों की उपलब्धता तथा राजाओं व नवाबों के काल की कलाओं को दिए गए संरक्षण से देश के अलग–अलग भागों में विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प उद्योग स्थापित और विकसित हुए हैं।

हस्तशिल्प उद्योग का स्वरूप अब धीरे–धीरे निर्यातपरक होता जा रहा है। यही तत्व इस उद्योग के विकास की जान है। हस्तशिल्प उद्योग की बाजार प्रेरित वृद्धि से भारतीय उत्पादों को वैश्विक बाजार उपलब्ध हो गया है। दूरसंचार क्रान्ति व यातायात के द्रुतगामी साधनों के कारण शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के हस्तशिल्प उत्पादों तक विदेशी क्रेताओं की पहुंच हो गयी है जिससे भविष्य में ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग एक नई दिशा को प्राप्त कर सकेगा तथा इस उद्योग में लगे शिल्पियों के जीवन में नई आशा का संचार होगा।

(लेखक बरेली कॉलेज, बरेली में समाजशास्त्र विभाग में पूर्व अंशकालिक प्रवक्ता हैं।)

ई–मेल : dr.bmsingh@yahoo.co.in

मथुरा की मूर्तिकला

डॉ. उमाशंकर दीक्षित

मथुरा की मिट्टी की मूर्तिकला बहुत पुरानी और समृद्ध है। इसका बाजार भी पुख्ता है। माल सभी बड़े-बड़े शहरों तक और दूर-दूर तक बिकता है। इन मूर्तियों में उकेरा या रंगों का मैचिंग भी लाजवाब होता है। शोरूम में सजे ये विभिन्न प्रकार के खिलौने बड़े आकर्षक और प्रभावशाली लगते हैं। हस्तशिल्प कलाओं का गढ़ ब्रज में लघु उद्योगों के रूप में मिट्टी के खिलौनों की कला भी अपने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यहां बनने वाले खिलौने न केवल मथुरा कला और शिल्प के बेजोड़ नमूने हैं बल्कि लघु उद्योग के रूप में भी यह उत्तम लाभकारी व्यवसाय है।

मध्य देश का हृदय स्थल है– मथुरा। यह प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक केंद्र रहा है। भारतीय संस्कृति और कला पर ब्रजभूमि की अमिट छाप है। मनोभावों की कुशल अभिव्यक्ति ही तो कला सौंदर्य है। अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम हैं और इन माध्यमों की भिन्नता ही कलाओं को जन्म देती है। ब्रज में कला और धर्म का परस्पर गहरा संबंध है। प्राचीनकाल से ही ब्रज संगीत, काव्य, मूर्ति, चित्र तथा वास्तुकलाओं का केंद्र रहा है। इन कलाओं के क्षेत्र में ब्रज का कोई सानी नहीं है।

ब्रज हस्तशिल्प कलाओं का भी गढ़ कहा जा सकता है। लघु उद्योगों के रूप में मिट्टी के खिलौनों की कला भी अपने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह अपने आप में अत्यंत समृद्ध कला है। मथुरा शहर के पूर्वी क्षेत्र में रंगेश्वर महादेव के पीछे एक मोहल्ला है– नौगजा, अम्बाखार। यह पूरा का पूरा मोहल्ला मिट्टी से बनने वाले खिलौनों का प्रमुख उत्पादन केंद्र है। यहां लगभग छह– सात घरों में यह खिलौना बनाने की कला लघु उद्योग के रूप में कई वर्षों से अबाध रूप से निरन्तर प्रवाहित है। लेखक ने इस लघु उद्योग में लगे कलाकारों से बात करके उनसे इस कला के बारे में अनेक जानकारियां प्राप्त की।

श्री गोपाल प्रसाद जी यहां के प्रमुख व्यवसायी हैं। इनका बहुत बड़ा शोरूम है जिनमें विभिन्न प्रकार की सैंकड़ों मूर्तियां सजी हुई हैं। इनके शोरूम पर 'गोपाल मूर्तिकला केंद्र' का बोर्ड लगा है। इनसे मुझे अनेक जानकारियां प्राप्त हुईं। इनके बाद दूसरे बड़े शोरूम 'आनन्द मूर्तिकला केंद्र' के व्यवस्थापक श्री आनन्द जी से मुलाकात की। तत्पश्चात् सतीश मूर्ति कला केंद्र गया। इसी प्रकार रामू, नारायण सिंह, वेद प्रकाश, चन्द्रपाल आदि से मिला।

'श्री गोपाल मूर्ति कला केंद्र' के मालिक श्री गोपाल प्रसाद से मैंने जानना चाहा कि जो लोग मूर्तियों का निर्माण करते हैं, उसका तकनीकी तौर पर प्रशिक्षण कैसे, कब और कहां से प्राप्त किया है?" उत्तर में उन्होंने बताया– 'इस उद्योग का तकनीकी ज्ञान हमें वंश परंपरा से ही प्राप्त हुआ है। अपने पिताजी, दादाजी आदि के द्वारा खिलौने बनाने की यह शिल्पकला हम लोगों ने सीखी है। हमने कहीं अन्यत्र जाकर इसकी ट्रेनिंग नहीं ली है। खिलौने बनाने के बाद उन्हें सुखा कर रंगने, पेंट करने आदि का काम हम स्वयं घर पर ही वंश परंपरा से करते चले आ रहे हैं।' जब उनसे यह पूछा गया कि आज लोग इस कार्य में कब से लगे हुए हैं तो उनका उत्तर ब्रज की बोली में इस प्रकार था– 'जन्म के पश्चात् जबते हमने होश सम्हारौ है, यानी बच्चापन ते ही हम जा काम कूं करते आए रहे हैं और जाई काम में हमारी उमर बीती जाय रही है।'

प्रश्न– यह खिलौने किस प्रकार तैयार किए जाते हैं?

उत्तर– इनके साँचे (डाई) होते हैं। उसमें मिट्टी गूंदकर भरनी पड़ती है। सांचे से मूर्ति निकालकर धूप में सुखा दी जाती है। सूखने का स्प्रे पेंट और रंग आदि किए जाते हैं।

प्रश्न– सांचे किस चीज के बने होते हैं तथा इन सांचों को क्या आप लोग स्वयं तैयार करते हैं?

उत्तर– नहीं साहब, इन सांचों को हम नहीं बनाते। ये बने–बनाए मंगाये जाते हैं। खिलौने हम दो प्रकार की मिट्टी के बनाते हैं। एक कागज की लुगदी, खड़िया व गोंद के मिश्रण से बनाई जाती है दूसरी 'प्लास्टिक पेरिस' होती है। प्लास्टिक पेरिस बाहर से राजस्थान से खरीद कर मंगाते हैं। इस प्रकार दो प्रकार की मिट्टी के अनुसार इनकी डाई या सांचे भी अलग–अलग होते हैं। कागज की लुगदी वाली मिट्टी के खिलौनों के लिए मिट्टी के सांचे प्रयोग में लाए जाते हैं जिन्हें हम आगरा से खरीद कर लाते हैं। प्लास्टिक पेरिस के लिए सांचे रबड़ के होते हैं जो झांसी के पास खजुराहो से मंगाए जाते हैं।

प्रश्न– मूर्तियों पर कलर या पेंट करने का शिल्प क्या है? रंग या पेंट किस प्रकार किया जाता है तथा उन्हें कैसे सजाया जाता है?

उत्तर– इस पर श्री गोपाल जी ने बताया कि मूर्तियों पर पहले स्प्रे पेंट मशीन से किया जाता है। पुनः उनके नाक, कान, आंख, भौहें आदि का श्रृंगार हाथ से किया जाता है। यानी आधा काम मशीन से और आधा काम हाथ से किया जाता है।

प्रश्न– आप जो सांचे क्रय करते हैं उनकी कीमत क्या होती है?

उत्तर– मिट्टी के तो सांचे आकार के हिसाब से 10,15,25 रुपये तक मिल जाते हैं परंतु रबड़ के सांचे 200 रुपये तक आते हैं। इनका मूल्य सांचों के आकार पर निर्भर होता है।

प्रश्न– इस गली में आप कितने लोग इस कार्य को करते हैं?

उत्तर– इस गली में छह–सात घरों में मूर्तिकला का कार्य होता है। सभी मिलजुल कर प्रेमपूर्वक यह कार्य करते हैं। हमारे साथ घर के सभी स्त्री–बच्चे, बड़े–छोटे मिलकर सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं।

प्रश्न– आप लोगों का माल मथुरा जिले के अलावा बाहर कहां–कहां तक जाता है?

उत्तर– मथुरा जिले में तो हर गांव में यह माल जाता ही है। विशेषकर दशहरा, दीपावली के आसपास अधिक जाता है। बाहर हमारा माल दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली, आगरा आदि बड़े शहरों में भी सप्लाई होता है।

प्रश्न– आप लोग वहां स्वयं प्रचार–प्रसार को जाते हैं या वे ही माल लेने स्वयं आते हैं।

उत्तर– नहीं साहब, हम लोग कहीं बेचने नहीं जाते। वे ही स्वयं यहां लेने आते हैं।

प्रश्न– मैंने आनन्द कुमार से पूछा कि खिलौनों में आप लोग क्या–क्या बनाते हैं?

उत्तर– उन्होंने बताया– सर! यहां पर दशहरा, दीपावली के अवसर पर अधिक माल बिकता है। इसलिए हम लोग गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, शंकर, पार्वती, हनुमान, राधा कृष्ण, राम, लक्ष्मण, जानकी आदि की कलात्मक मूर्तियां अधिक बनाते हैं। इसके अलावा कलात्मक गुड़िया, मोर, तोता, हाथी, घोड़ा, शेर, चीते, बंदर आदि के खिलौने भी बनाते हैं। उन्होंने बताया कि हमारे कारखानों में गिफ्ट आइटम जैसे लड़का– लड़की, गुड़िया, फ्रेम, तोता, कबूतर आदि भी बहुत सुन्दर बनाये जाते हैं। ये मूर्तियां 4–5 इंच से लेकर दो–ढाई फुट तक के आकार की होती हैं। इनका मूल्य भी 4–5 रुपये से लेकर सात सौ रुपये तक होता है।

इस प्रकार इन सभी लोगों से बात करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि मथुरा की मिट्टी की मूर्ति कला बहुत पुरानी और समृद्ध है। इसका मार्किट भी पुख्ता है। माल सभी बड़े–बड़े शहरों तक और दूर–दूर तक बिकता है। इन मूर्तियों में उकेरा या रंगों का मैचिंग भी लाजवाब होता है। शोरूम में यहां सजे ये विभिन्न प्रकार के खिलौने बड़े आकर्षक और प्रभावशाली लगते हैं।

वैसे दीपावली, दशहरा के अवसर पर ये खिलौने ब्रजभूमि के प्रत्येक बड़े गांव में कुम्भकार (प्रजापति) लोग लक्ष्मी, गणेश, दीया, दिवला, दीबट, हटरी आदि बनाकर बेचते हैं। उनको साधारण रूप से खड़िया, गेरु या काली स्याही से रंग देते हैं परंतु ये खिलौने सीजनल और साधारण श्रेणी के होते हैं। कलात्मकता की दृष्टि से उनका अधिक महत्व नहीं है।

मथुरा के इस लघु उद्योग में लगे उपरोक्त छः–सात परिवार प्रायः एक ही जाति और कुटुम्ब के हैं। इनके बच्चे, स्त्री सभी लोग इस कार्य में पूरा हाथ बंटाते हैं। इनके साथ बातचीत में यह भी पता चला कि इनके माल की कीमत पूरी और अच्छी मिल जाती है। इन्हें इस कार्य को करने में कोई भी कठिनाई नहीं है। वास्तव में ये खिलौने मथुरा कला और शिल्प के बेजोड़ नमूने हैं। यह लघु उद्योग के रूप में उत्तम लाभकारी धंधा है।

(लेखक जमुना–जल पत्रिका के सम्पादक हैं।)

हस्तशिल्पों का निर्यात

वर्ष 2006–07 के दौरान हाथ से बुने कालीनों सहित हस्तशिल्प का निर्यात 20963 करोड़ रुपए (4619.20 मिलियन अमरीकी डालर) का था जिससे रुपयों में 19.04 प्रतिशत तथा डालरों में 16.08 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। वर्ष 2006–07 के दौरान जिन मुख्य निर्यात मदों में वृद्धि दर्ज की गई, वे थी– कालीन (19.23 प्रतिशत) ज़री एवं ज़री की वस्तुएं (13.08 प्रतिशत) कलात्मक धातुपात्र (12.89 प्रतिशत) तथा विविध हस्तशिल्प वस्तुएं (5.52 प्रतिशत)। वर्ष0 2007–08 के लिए 25278 करोड़ रुपए का निर्यात लक्ष्य रखा गया है।

वर्ष 2007–08 (दिसम्बर, 07 तक) हस्तनिर्मित कालीनों एवं फर्श बिछावनों के अनंतिम निर्यात में वर्ष 2006–07 की उसी अवधि के दौरान हुए निर्यात की तुलना में रुपयों में 16. 79 प्रतिशत की तथा अमरीकी डालर में 5.85 प्रतिशत की गिरावट आई है। 2007–08 के दौरान (दिसम्बर, 08) हाथ से बुने कालीनों सहित हस्तशिल्प का कुल अनंतिम निर्यात 12580.74 करोड़ रुपए (3104.16 यू.एस. मिलियन डालर आकलित किया गया है जोकि 2006–07 की उसी अवधि के दौरान हुए निर्यात से रुपयों में 12.51 प्रतिशत की और यू.एस डालर में 23 प्रतिशत गिरावट दर्शाता है।

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

बदलते दौर में हस्तकला

डॉ. सुधीश कुमार पटेल

हस्तशिल्प उद्योग कई कठिनाईयों के बावजूद भारत के कोने-कोने में किसी न किसी रूप में अपनी उपस्थिति बनाए हुए है। हालांकि हमारे हस्तशिल्प उद्योग को आज आधुनिक वस्त्र उद्योग, प्लास्टिक उद्योग, स्टील उद्योग, प्लास्टिक, फर्नीचर उद्योग आदि से बड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। हस्तशिल्प उद्योग को उत्पादों की जटिलता, मानकीकृत उत्पादों का अभाव, औद्योगिक नीतियों व बाजार प्रणालियों से पूर्णतया उपेक्षित शिल्पकारी व्यवसाय, परम्परागत तौर पर विशिष्ट जातियों व खास समूहों तक सीमित रहना, कम आय दर के चलते नई युवा पीढ़ी का इस पारिवारिक व्यवसाय के प्रति लगाव न होना, हस्तशिल्प उत्पादों के विपणन की समुचित व्यवस्था के अभाव में उत्पादकों का मध्यस्थों द्वारा शोषण एवं लाभ लोलुपता जैसी अनेक चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। इन चुनौतियों को भेदते हुए ईमानदार कोशिश से ही हस्तशिल्प कला को रहन-सहन, फैशन, रुचियों में आए परिवर्तन के अनुरूप नई दिशा और नया आयाम देकर बेरोजगारी एवं निर्धनता निवारण का कारगर औजार बनाया जा सकता है।

सदियों से भारत शिल्पकारों तथा शिल्पकारिता का देश रहा है। हस्तशिल्प सदा से मानव जीवन की एक मूल गतिविधि रही है। हस्तशिल्प के विकास में दृढ़ एवं प्रभावशाली मानवतावाद तथा भावुकता के साथ, मानव ने सर्वप्रथम अपने दैनिक उपयोग की वस्तुओं, अस्त्रों तथा बाद में वस्त्रों व आसपास के वातावरण को सुसज्जित करना आरम्भ किया। प्रत्येक समुदाय एक नियमित जीवन जीता था तथा जीवन के उतार-चढ़ाव को भी उसी प्रवाह में ग्रहण करता था। ग्रहण करना मानव जीवन चक्र की सहज स्वीकृति

है। अति प्राचीन युग का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि हस्तशिल्प का गुण आदिमानव के विकास के साथ–साथ विकसित हुआ है। निश्चित ही हस्तकला की उत्पत्ति उस शांत एवं प्रकाशमय वातावरण में हुई, जहां समाज मनोरम प्रकृति के अधिक निकट था तथा उसके दिन–रात, परिवर्तित ऋतुओं के अनुभव से बंधे जीवन–चक्र तथा वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए संस्कृति को विकसित करते थे। कला गतिविधियों में सदैव मुखरित होने वाली कुशलता, विशेषज्ञता एवं प्रवीण कलाकारों की गतिविधियां हस्तकला में स्तर को बनाए रखने के लिए प्रयत्न ही नहीं करती थी, अपितु नये–नये प्रयोगों को प्रोत्साहित एवं संचालित भी करती थी। अर्थात् सृजन ही हस्तकला का आधारभूत सिद्धांत है। ग्रंथों एवं अभिलेखों से स्पष्ट है कि भ्रमणशील शिल्पकारों को विशेष दर्जा प्राप्त था। आज भी बेजान पत्थरों में जान डालकर लोगों को वाह–वाह करने पर मजबूर कर देने वाले शिल्पकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं नवीन परिवर्तित तकनीक के फलस्वरूप भिन्न प्रकार की शैलियों तथा रूपों का विकास कर रहे हैं।

असीम धैर्य तथा एकाग्रचित्त से सम्पन्न किए गए शिल्पकारी से उत्पन्न आनंद ने जीवन को सौंदर्य से समृद्ध कर दिया। यही कारण है कि भारतीय इतिहास इस स्वर्णिम काल में पहुँचा। अनेक विदेशी यहां आए तथा यहां के मूल निवासियों से परस्पर विचारों, अनुभवों तथा कौशल का आदान–प्रदान कर समाज को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया। मानव की गरिमा, हाथों की गरिमा और श्रम की गरिमा के साथ हस्त शिल्पकला ने, न केवल अपना एक छत्र साम्राज्य बनाए रखा अपितु वह नवीन कला, एक नवीन संस्कृति के निर्माण में केन्द्र बिन्दु बनी रहीं । शिल्पकार का अपना कोई विशिष्ट व्यावसायिक वर्ग, जाति अथवा लिंग नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही सृष्टा एवं सृर्जक है। श्रम प्रधान हस्तशिल्प उद्योग गांवों, कस्बों के साथ–साथ शहरों तक की अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है, परन्तु यह कार्य परम्परागत जीविकोपार्जन के साधन के रूप में हरिजन एवं आदिवासियों के द्वारा किया जाता रहा है। इनके द्वारा बनाई गई उत्कृष्ट वस्तुएं देखकर निश्चय ही आश्चर्य होता है। ग्रामीण परिवेश की दक्ष शिल्पकारिता की परम्परा को सुदृढ़ करने तथा उसके पूर्ण विकास के लिए निस्संदेह इससे जुड़े शिल्पकारों की वर्षों की मेहनत एवं पीढ़ी दर पीढ़ी इस कला को सहेज कर रखने की दृढ़ इच्छा शक्ति का ही कमाल है। यह अत्यधिक सुकोमल एवं मोहक वस्तुओं से लेकर जटिल तकनीक द्वारा निर्मित वस्तुएं सुन्दर धरोहर के रूप में ही मूल्यवान नहीं हैं, अपितु हमें उनके साथ रहने, स्पर्श करने, अनुभव करने, उपयोग करने तथा महफूज रखने की जरूरत है, जिससे उनके सौंदर्य से हमारा जीवन समृद्ध बना रहे।

विधाता ने इस दुनिया को सजाने और संवारने के लिये प्रकृति को ही चुना था। प्रकृति ने पर्वत, घाटी, झरने, नदी, सागर, वन आदि से पृथ्वी को सुशोभित किया। आकाश को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि से प्रकाशित किया और विविध रंग–बिरंगे फूलों–फलों से धरा को अलंकृत किया, जिससे वायु सुगंधित लहरों के साथ बहने लगी और मिट्टी भी सौंधी हो चली। जाहिर है मिट्टी मनुष्य की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोगी वस्तुओं के निर्माण का प्राचीनतम प्राकृतिक साधन है। मिट्टी से निर्मित भारतीय कलाकृतियों की मुख्य विशेषता इसमें विविधता है जो आज भी आधुनिकता का रूप लिए हुए लोकशैली के रूप में प्रचलित है। भारतीय हस्तशिल्प परम्परा की निरंतरता का यह एक उत्तेजक तथ्य है। सच में इसे कालांकित नहीं किया जा सकता, यह मानव की प्रथम शिल्पकारिता का द्योतक है। संयोग से उत्पादकता के उद्देश्य से किया गया चाक का अविष्कार ही मानव का प्रथम चलायमान यंत्र प्रतीत होता है, बाद में अग्नि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप मिट्टी के बर्तनों को भट्टी में पकाया जाने लगा जिससे "टेराकोटा" कला की उत्पत्ति हुई। कलात्मक सजीवता के साथ विकसित टेराकोटा मिट्टी से मूर्ति बनाने की कला अति प्राचीन शैली है। मंदिरों, राजभवनों आदि के निर्माण में मिट्टी के फलक, नक्काशीदार ईंटों तथा टाइलों का प्रयोग वास्तुकला की प्रमुख सामग्री के रूप में सुंदर डिजाइनों द्वारा भवनों के भीतर भी अलंकृत किया जाने लगा है। भारतीय संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शिल्पकला में निर्माण का मूल आधार केवल मिट्टी ही थी। बाद में केवल निर्माण प्रक्रिया तथा यंत्रों से परिवर्तन के साथ यह लकड़ी, धातु तथा पत्थर में भी प्रचलित हुई।

भारत में वृक्षों का विशेष महत्व है। यहां के वनों में लकड़ी की विभिन्न किस्में उपलब्ध हैं तथा प्रत्येक किस्म में निजी संरचनात्मक क्षमता तथा गुण होते हैं। मानव जीवन के प्रतिमान हस्तकला के प्रति समर्पण का भाव इससे भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य के भीतर का कलाकार, काष्ठ को ठोस रूप अथवा आकार देने के लिए उत्कंठित हुआ तथा शीघ्र ही एक अद्भुत सौंदर्य जगत् का निर्माण हुआ। आसपास के वातावरण तथा छोटी से छोटी वस्तु को भी नक्काशी द्वारा दक्ष काष्ठकार ने विभिन्न शैलियों तथा रूपों को विकसित किया। काष्ठ सहजता से उपलब्ध होने वाला तथा भव्यता को बनाएं रखने वाला एक अनुपम प्राकृतिक साधन है। जिसमें काष्ठ की प्रत्येक किस्म, एक आकर्षक हस्तकला के रूप में प्रकट हुई। घरेलू वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य शिल्प–कृतियों को भी बेलबूटों की नक्काशी द्वारा सुंदर बनाया जाता है। उन्हें पशु अथवा पक्षी के आकार में भी ढाला जाता है। काष्ठ शिल्प में मूर्तियों के

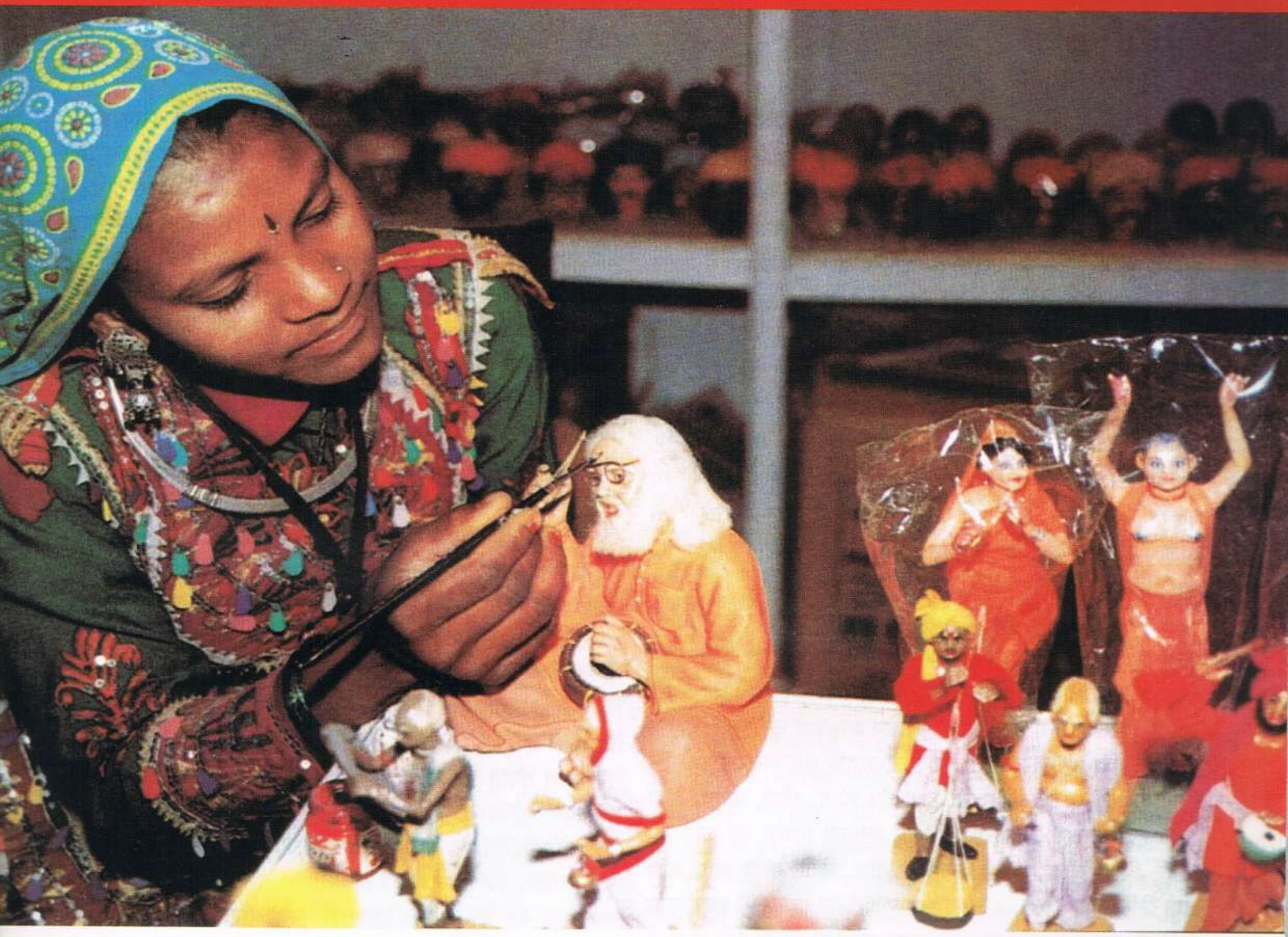

निर्माण तथा वास्तुशिल्प में प्रयुक्त होने पर यह कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। यह सब हस्तशिल्पकला की उच्च कल्पना शक्ति को भी दर्शाता है, साथ ही यह भी महसूस कराता है कि जब वह नवीन किन्तु उद्देश्यपूर्ण कृतियों का निर्माण अपनी प्रतिभा और कौशल से करता है तो उसे इस आत्मसंतुष्टि से परम आनंद की अनुभूति होती है।

इतिहास साक्षी है कि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में हाथों के हुनर और कौशल का अभूतपूर्व योगदान रहा है। वस्त्र जगत में सिरमौर रही हस्तकला वास्तव में भारतीयता के आत्मीय स्पर्श के साथ प्राचीनकाल से ही धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध रही है। अनेकरूपता एवं वैभव से भरे विभिन्न पर्वों पर देवताओं तथा मनुष्यों के वस्त्र विशिष्ट रंगों एवं डिजाइनों से युक्त होते थे। प्राचीन समाज का जनजीवन प्रकृति के अधिक निकट होने के कारण उनके वस्त्र भी लोकशैली पर आधारित होते थे। रेगिस्तान में चमकीले रंगों की आभा दिखाई देती थी, जिससे मनुष्य पानी, आकाश तथा वनों का प्राकृतिक आनंद ले सके। जबकि हरित क्षेत्रों में इन्हें चमकदार रंगों वाला नहीं बनाया जाता था। पहाड़ी क्षेत्रों में बड़े–बड़े तथा गहरे घने डिजाइनों वाले वस्त्र प्रचलित थे। कपड़े से बनी अनेक वस्तुओं जैसे चंदोबा से लेकर पोशाक तक, बिछौने, पालकी की सज्जा, आसन, झूले, तम्बू एवं कालीन आज भी बनाये जा रहे हैं। वस्त्र जगत की सभी वस्तुएं अलंकृत होती हैं, जैसे पलंग को सुसज्जित करने के लिए हीरे–जवाहरात से युक्त सोने से तारों वाले पलंग पोश का प्रयोग किया जाता है। वस्त्रों की प्रचुर अनेकरूपता में सहज वातावरणीय प्रभावों के साथ–साथ स्थानीय सामाजिक प्रभावों का भी बड़ा योगदान रहा है।

जन–समस्या की विशालता और विकरालता के बाद भी अनंत–काल से भारत में हाथ से बुने कपड़े जग प्रसिद्ध हैं। हथकरघे का इतिहास बताता है कि हाथ से बुनाई की परंपरा भारत की प्राचीन समृद्ध विरासत का महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें हमें भारत की सांस्कृतिक विविधता और बुनकरों के हुनर की झलक मिलती है। सूत, रेशम, ऊन से बने वस्त्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नये–नये डिजाइन बनाने की अद्भुत क्षमता है, जिनमें अपने–अपने क्षेत्र की

विविधता मिलती है। हथकरघा की विविधता और उत्पाद की गुणवत्ता ही इसकी क्षेत्रीय अस्मिता की पहचान है। सृजनशील बुनकर अपने–अपने हथकरघों पर केवल कपड़े तैयार नहीं करते हैं बल्कि तरह–तरह के मिथकों, आस्थाओं और प्रतीकों के साथ अपनी कल्पना को भी मूर्त रूप देते हैं। देश में तैयार होने वाले कुल कपड़े में करीब 13 प्रतिशत हिस्सेदारी हथकरघा क्षेत्र की है, जिसमें ऊन, रेशम और हाथ से काते गए धागे से बने कपड़े शामिल नहीं हैं। आज के शहरी परिदृश्य में जहां सब कुछ पश्चिम की नकल जान पड़ता है, यह देखकर संतुष्टि मिलती है कि फैशन के इस दौर में भी जटिल और विविध विशेषताओं को स्वीकार करते हुए हथकरघा से बनी वस्तुएं, स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अपनी अलग पहचान बना चुकी हैं। अब ज्यादा संख्या में लोग–खासतौर से दलित और समाज के कमजोर वर्गों के अन्य लोग बुनाई को आमदनी बढ़ाने की गतिविधि के रूप में अपना रहे हैं।

विश्व में आभूषणों का जितना महत्व भारत में है उतना किसी अन्य देश में नहीं है। वास्तव में आभूषण भारतीय संस्कृति की परम्परा का अंग तथा धार्मिक भावनाओं से युक्त सामाजिक ढांचे का प्रमुख पक्ष हैं। हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त भारतीय आभूषणों को देखने से यह प्रमाणित होता है कि तब से लेकर आज तक भारतीय आभूषणों की निर्माण शैली में सतत् विकास हुआ है। सोना, चाँदी, कांस्य, तांबा तथा अष्ट धातु में अलंकरण के लिए बहुमूल्य पत्थरों एवं कांच का प्रयोग किया जाता रहा है। माणिक, शंख, मोती, हाथी दांत, कांच तथा विभिन्न प्रकार के अन्य बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया गया है। समय के साथ–साथ आभूषणों पर बहुमूल्य व अल्प मूल्य पत्थरों की जड़ाई कला में वृद्धि हुई है। यह निश्चय ही आश्चर्यजनक तथ्य है कि प्राचीन डिजाइनों में से अधिकतर आज भी अपरिवर्तित रूप में देखे जा सकते हैं। मुख्यतः आभूषण लोकरीति की दृष्टि से अत्यधिक विशिष्ट, कलात्मक, अलंकृत तथा रंग–बिरंगे होते हैं। स्वर्ण, चांदी व अन्य धातुओं के आभूषण जैसे कंठहार, कंगन, झुमके, नथ, बाजूबंद, केश–आभूषण आदि शिल्प वस्तुएं ही हैं। भारत में आभूषणों की परम्परा पश्चिमी देशों से भिन्न एवं कलात्मक सोने–चांदी, हीरे तथा रत्नजड़ित आभूषणों के साथ ही आर्टिफीशियल ज्वैलरी की खाड़ी व यूरोपीय देशों में भारी मांग है। इस प्रकार के हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात से देश को बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

जड़ाऊ कार्य से आशय एक सामग्री की सतह पर दूसरे धातु के टुकड़ों को लगाने से है। इसके लिए प्रायः हाथी दांत, हड्डियों, धातुओं तथा शीशम, आबनूस एवं चंदन इत्यादि विभिन्न प्रकार की लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। उत्कृष्टता और कारीगरी की शानदार परम्परा देश के कोने–कोने में फैली है । उत्कृष्ट शिल्पकार सृजनात्मक और नवाचारी मस्तिष्क से जड़ाऊ–कार्य में अपने हुनर द्वारा एक सामान्य लकड़ी को विभिन्न प्रकार के मनोहर रूपों में परिवर्तित कर देता है। काष्ठ अलंकरण, मुख्यतः पीतल तथा अंशतः चांदी के तारों द्वारा जड़ाई से भी किया जाता है। जड़ाऊ कार्य तीव्र दृष्टि, कुशाग्र बुद्धि, फुर्ती, परिशुद्धता तथा यंत्रों का दक्ष परिचालन इत्यादि सभी गुण समन्वित रूप से कार्य करते हैं। जड़ाऊ कार्य का प्राचीनतम रूप आगरा किले के सोमनाथ द्वार पर अंकित है। मुक्ता सीप की सुंदर नक्काशी का उत्कृष्ट रूप अहमद नगर के शाह आलम मकबरे की लकड़ी के चंदोवे पर देखा जा सकता है। तकनीकी विस्तार के चलते नित नई और सस्ती वस्तुओं ने प्रतिस्पर्धा और आधुनिकता के इस दौर में लुभावनी और चकाचौंध की रोशनी में नहायी, उत्पादित वस्तुओं से भरपूर बाजार में भी हस्तशिल्प कला अपनी हुनरमंदी के कारण दृढ़ता के साथ खड़ी है।

शिल्पकला में प्राचीन वास्तविक प्रमाणों की भांति हाथीदांत कला के लिए भी हमारी दृष्टि हड़प्पाकालीन वस्तुओं पर पड़ती है। हाथीदांत ने देश के ऐतिहासिक तथा कलात्मक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। किन्तु इसे प्रधान भारतीय शिल्प नहीं माना जा सकता। इससे हमें ज्ञात होता है कि उस काल में भी इस शिल्प को गंभीरता से व्यवहार में ही नहीं लाया गया था। परन्तु इसकी वास्तविक हस्तशिल्प कला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि इसके अलंकरण में विशेष गुण है। हाथीदांत की बड़े ही आकर्षक ढंग से कटाई कर इसे आभूषणों में परिवर्तित किया जाता है। हाथीदांत से घरेलू उपयोग तथा स्नानागार की वस्तुओं से लेकर आभूषणों तक अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। हाथीदांत को काष्ठ की भांति चित्रांकनों द्वारा भी सुसज्जित किया जाता है। इस कला की पहचान एवं लोकप्रियता हस्तशिल्प के दस्तकारों की कठिन मेहनत, सृजनात्मक कौशल एवं पेशे से जुड़ी निष्ठा का ही परिणाम है।

ग्रामीण हस्तशिल्प को सांस्कृतिक धरोहर से अलग करके न तो देखा जा सकता है और न समझा जा सकता है। मूर्तिकला एवं वास्तुकला में धार्मिक रीति–रिवाज एवं परंपराओं का संगम है। देवी–देवताओं की मूर्तियों एवं अनेक प्रकार के रूप रचने के लिए लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, चूना, प्लास्टर ऑफ पेरिस, लोहा, तांबा, पीतल, कांसा, अष्ट धातु आदि सभी का प्रयोग किया गया। मूर्तियां गढ़ने, बनाने, तराशने एवं ढालने का कार्य शताब्दियों से होता चला आ रहा है। मिट्टी, काष्ठ, प्रस्तर धातु अथवा वस्त्र आदि किसी भी अन्य पदार्थ की खाली सतह को अलंकृत करने की निरंतर इच्छा ने मनुष्य को इस कला की ओर प्रेरित किया। इसमें से प्रत्येक का उत्पादन इतनी अधिक मात्रा में हुआ कि हर एक ने अपना एक स्वतंत्र शिल्प जगत विकसित कर लिया, जो उसकी प्रचुर मात्रा में पूर्ति कर सके। अलंकरण के नियम अत्यधिक प्रभावशाली हैं, चाहे

वह अलंकरण धातु, वस्त्र अथवा काष्ठ किसी पर भी किया गया हो। ये इतने अधिक सुनियोजित तथा अभिव्यंजक होते थे कि अलंकरण एक आवश्यक तत्व ही प्रतीत होता है। वास्तव में अलंकरण कृत्रिम रूप में थोपा हुआ नहीं अपितु सहज स्वाभाविक प्रतीत होता है। बड़े–बड़े शहरों में स्थापित इन केन्द्रों में देश के भिन्न–भिन्न भागों से एकत्र हुए शिल्पकारों से विभिन्न शैलियों का संयोजन होता है। सतह पर महीन नक्काशी, कटाईदार फलकों पर लोकदृश्यों का चित्रण तथा आकृतियों के उत्कृष्ट प्रतिरूपण आदि के आर्कषक नमूने देखे जा सकते हैं।

पर्यटन से समाज में उद्यमिता का विकास किसी न किसी रूप में हो रहा है । प्राकृतिक सौंन्दर्य से परिपूर्ण, हस्तनिर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता तथा उसमें मौजूद कला–कौशल के सहारे ही अनेक हस्तशिल्प उत्पाद पर्यटन उद्योग को बढ़ावा दे रहे हैं। यह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि देश के सभी पर्यटन स्थलों पर बड़ी संख्या में स्थापित हस्तशिल्प वस्तुओं के एम्पोरियम पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। देशी–विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के कारण कुटीर उद्योग, हस्तकला, लोककला, लोकसंगीत, कशीदाकारी व दस्तकारी के कारोबार को पुनः बढ़ावा मिल रहा है, जिससे गाँवों में नये रोजगार का सृजन हो रहा है। इन वैकल्पिक रोजगारों के कारण सूखे व बाढ़ जैसी आपदाओं से निराश कामगारों का शहरों की ओर पलायन रुकेगा। लेकिन अब स्थिति तो यहां तक हो गई है कि पर्यटक ग्राहकों विशेष रूप से विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये हर प्रकार के उचित–अनुचित हथकंडे अपनाए जाने लगे हैं। यदि पर्यटन से ग्रामीण हस्तशिल्प को फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर मिलता है तो नारियल, जूट, बांस, हाथकरघा, हस्तशिल्प, रेशमकीट पालन, चमड़ा, मिट्टी के बर्तन जैसे परम्परागत उद्योगों को, जो लगभग मृतप्रायः स्थिति में हैं, पुनर्जीवन मिलेगा। प्रकृति व संस्कृति के संरक्षण की दिशा में पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए नित नई पहल करनी होगी तथा हस्तकला पर भी पर्याप्त रचनात्मक सोच निर्धारित करनी होगी।

भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था में ग्रामीण विकास की दौड़ में पीछे छूट रहे हैं तब विकसित बनने की राह में ग्रामीण हस्तशिल्प को फिर से नई पहचान देने की और अधिक आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, हरियाणा और राजस्थान जैसे राज्यों के गांव में हस्तशिल्प का कभी जाल फैला हुआ था, जहां पर ग्रामीण शिल्पकार अपने हस्तशिल्पों से विदेशियों तक का मन मोह लेते थे। ग्रामीण हस्तशिल्प को आज सूरजकुंड मेले द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व दिलाने का प्रयास किया जा रहा है, जबकि इसके लिए और प्रयास करने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले शिल्पकार भले ही अकुशल कहे जाते हो परन्तु उनकी मेधा अतुल्यनीय है। खुर्जा के क्राकरी उद्योग के मजदूर इच्छा, लगन एवं मेहनत के द्वारा बर्तनों पर जिस तरह की कलाकारी करते हैं, वह मन को मोह लेती है। इसी तरह फिरोजाबाद का चूड़ी उद्योग, भदोही के कालीन उद्योग, मुरादाबाद में बर्तन उद्योग, मिर्जापुर के दरी व बर्तन उद्योग, वाराणसी में खिलौना व साड़ी उद्योग, मध्यप्रदेश के चंदेरी में साड़ी उद्योग, महाराष्ट्र के कोल्हापुर में चप्पल उद्योग, गुजरात व राजस्थान में महिलाओं द्वारा कपड़ों पर की जाने वाली कशीदाकारी, कश्मीर के हस्तशिल्प उद्योग । उत्तर–पूर्वी राज्यों के कुटीर उद्योग में काम करने वाले मजदूरों को अकुशल नहीं कहा जा सकता, अपने हुनर से ये अपने उत्पादों में जान डाल देते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी मार्केटिंग पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। यदि ग्रामीण क्षेत्र की हस्तकला को लोकप्रिय एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से जोड़कर हुनरमंद ग्रामीणों को प्रशिक्षण दिया जाये तो यह कला निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपना सिक्का जमा सकती है।

आज सम्पूर्ण विश्व, कट्टर साम्प्रदायिकता की त्रासदी से गुजर रहा है। ऐसे समय में भी भारत अपनी कला संस्कृति की वजह से दुनिया में अलग तरह का दर्जा रखता है। तेजी से बदल रही दुनिया में आज पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध, अत्याधुनिक दिखने की चाह में सांस्कृतिक मूल्यों को पीछे छोड़ने की कवायद चल रही है। हमारे गांव आज भी भारतीय संस्कृति के ध्वजवाहक बने हुए हैं। लेकिन बढ़ते शहरीकरण और विदेशी वस्तुओं से पटते बाजार ने भी हस्तकला को पीछे छोड़ने का कार्य किया है। निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जाना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमारा हस्तशिल्प उद्योग अनेक प्रकार की कठिनाईयों को नजरअंदाज करते हुए भारत के कोने–कोने में किसी न किसी रूप में अपनी उपस्थिति बनाये हुए है। हालांकि हमारे हस्तशिल्प उद्योग को आज आधुनिक वस्त्र उद्योग, प्लास्टिक उद्योग, स्टील उद्योग, प्लास्टिक, फर्नीचर उद्योग आदि से बड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। उत्पादों की जटिलता, मानकीकृत उत्पादों का अभाव, औद्योगिक नीतियों व बाजार प्रणालियों से पूर्णतया उपेक्षित शिल्पकारी व्यवसाय परम्परागत तौर पर विशिष्ट जातियों व खास समूहों तक सीमित रहना, कम आय दर के चलते नई युवा पीढ़ी का इस पारिवारिक व्यवसाय के प्रति लगाव न होना, हस्तशिल्प उत्पादों के विपणन की समुचित व्यवस्था के अभाव में उत्पादकों का मध्यस्थों द्वारा शोषण एवं लाभ लोलुपता जैसी अनेक चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। आशा है इन कुछ विशेष चुनौतियों को भेदते हुए ईमानदार कोशिश द्वारा हस्तशिल्प कला को रहन–सहन, फैशन, रुचियों में आए परिवर्तन के अनुरूप नई दिशा और नए आयाम देकर बेरोजगारी एवं निर्धनता निवारण का कारगर औजार बनाया जा सकता है।

(लेखक चंचलबाई पटेल महिला महाविद्यालय जबलपुर में कार्यरत हैं।)
ई–मेल : sudheesh_1973@rediffmail.com

केन का कलात्मक सौन्दर्य

पूनम

कितना असम्भव-सा लगता है एक मोटा, खुरदरा बेडौल बेंत और उसका एक नाजुक खूबसूरत कलात्मक फर्नीचर के पीस में रूपान्तरण। सहज ही आंखों को विश्वास नहीं होता पर कहते हैं इंसान में अद्‌भुत क्षमता होती है और अपनी लगन, धैर्य व दृढ़ता से वह कुछ भी कर सकता है। इसी उक्ति को चरितार्थ करते हैं घुमन्तू जाति के यह खानाबदोश लोग और इनके द्वारा केन से बनाया गया सामान।

विभिन्न जातियों के ये खानाबदोश लोग गांव-गांव घूमते हैं। शायद आजीविका कमाने की ललक ने इन्हें साथ जोड़ रखा है। पुश्तैनी धंधे के रूप में यह केन के फर्नीचर व कलात्मक सामान बनाने की कला को अपनाए हुए हैं और भारतीय सभ्यता की एक धरोहर को इन्होंने अक्षुण्ण रखा है।

पानी में उगने वाला यह बेंत अण्डमान निकोबार व असम की तराई में सैंकड़ों की तादाद में, बिना किसी विशेष प्रयत्न के उगा हुआ पाया जाता है। बारीकी व मोटाई में भिन्नता लिए हुए ये केन दलदली जलवायु का एक अभिन्न हिस्सा हैं। प्राकृतिक तौर पर वाटरप्रूफ यह केन धूप से मजबूत होता है और उसमें कीड़ा नहीं लगता। केन देश के ज्यादातर हिस्सों में असम से मंगवाया जाता है। एक ट्रक केन की लागत बीस हजार रुपये तक आती है।

कारीगर बेंत को पानी की बड़ी टंकियों में एक सप्ताह तक भिगोए रखते हैं तत्पश्चात् आग पर उसे गर्म करते हैं। फिर साफ करने के पश्चात् उसे मनचाहे आकार में मोड़ दिया जाता है। किताबों में छपे डिजाइन व उपभोक्ता की मांग के अनुसार बेंत को सांचों में ढाला जाता है।

ये कारीगर अपनी कल्पनाओं व अनुभव को बेंत का सामान बनाते वक्त काम में लेते हैं। छेनी, हथौड़े व कीलों से मनचाहा आकार देकर यह फर्नीचर तैयार किया जाता है।

सोफा, टेबल, मुड्डे, स्टूल, रैक, शोपीस, झूले, टोकरियां, लैम्प आदि खूबसूरत सांचों में ढले केन के उत्पाद अत्यधिक मनमोहक होते हैं। छोटे आईटम में दो दिन और बड़े आईटम में हफ्ता–दो हफ्ता व्यक्तियों के हिसाब से लगता है। इस कार्य में पूरा परिवार ही एक साथ जुटता है। इस काम में बच्चे, स्त्रियां व बूढ़े भी परस्पर योगदान देते हैं।

एक बार आकार लेने के पश्चात् पुनः उसे देख कर फिनिशिंग टच दिया जाता है। फिर उस पर पॉलिश की जाती है। केन के उत्पादों पर पॉलिश जादुई असर करती है और उनमें मानों जान आ जाती है।

बेंत का फर्नीचर जहां उच्च वर्ग की शान है वहीं मध्यम वर्ग की लालसा। सीम, धूप, पानी और कीड़ों से सुरक्षित यह फर्नीचर व हस्तशिल्प सामान जितने मजबूत हैं उतने ही सुविधाजनक व सुरक्षित भी। केन के उत्पादों को प्रतिवर्ष पॉलिश करवा लेना चाहिए। पालिश से इनमें नई जान आ जाती है और उनकी उम्र भी लम्बी हो जाती है।

स्टोव की लौ में केन को मोड़ के मनचाहे आकार में ढाला जाता है। किताबों, मैगजीनों की मदद से व स्वयं की कल्पना से उत्पाद तैयार किया जाता है। प्रत्येक उत्पाद के निर्माण में एक–एक परिवार को कई दिन लग जाते हैं। ग्राहकों की विशेष मांग पर विशेष डिजाइन भी तैयार किए जाते हैं।

कई बार असम से यह कारीगर अपने उत्पादों को लेकर पूरे देश में घूमते हैं। उद्योग मेलों में, दशहरा मेलों में, प्रदर्शनी, हाट बाजार, हर जगह पर जहां माल की मांग होती है, इनकी रोजी–

रोटी का जुगाड़ इन्हें ले जाता है, बिना किसी आश्रय के यह घुमन्तू जाति सड़कों पर रहती और वही सो जाती हैं।

बेंत के पलंग की आजकल काफी मांग है। शोपीस तो हाथोंहाथ बिकते हैं। बड़े होटलों, रेस्टोरेन्ट, सिनेमा हाल, आफिसों में आपको केन के बने सामान, शोपीस आदि दिख जाएंगे। वैसे चीन से आए सजावटी सामान व प्लास्टिक से प्रतिस्पर्धा के कारण बेंत का सामान उतना डिमांड में नहीं है जितना होना चाहिए। परन्तु कला के पारखियों के बीच इनका महत्व आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

प्रतियोगिता व प्रतिस्पर्धा के इस युग में अवश्य ही हस्तशिल्प के रूप में बेंत कम प्रसिद्ध हो परन्तु कला व हुनर के क्षेत्र में आज भी उसका कोई सानी नहीं है।

कारीगर के सधे हाथों से बुने केन के छोटे–छोटे उत्पाद उसकी कला और हमारी इस ऐतिहासिक धरोहर की जीती–जागती मिसाल है। आज यह कारीगर अपने बच्चों को पढ़ा भी रहे हैं और इन्हें बेंत के सामान बनाने में कौशल भी सिखा रहे हैं।

कल यदि आवश्यकता पड़े तो यह बच्चे पढ़ाई के साथ–साथ अपना जीविकोपार्जन इस कला से कर सकते हैं। इन्हें सिखाया जाता है कि अधिक मोटा अत्यधिक खुरदरा बेंत न लिया जाए। बेंत यदि कही से असमान हो तो रगड़ के, घिस के, उससे समान बना दिया जाए। छोटे व पतले बेंत नाजुक चीजें बनाने के काम आते हैं वही मोटे व मजबूत बेंत से सोफे, पलंग, और रैक्स का निर्माण होता है।

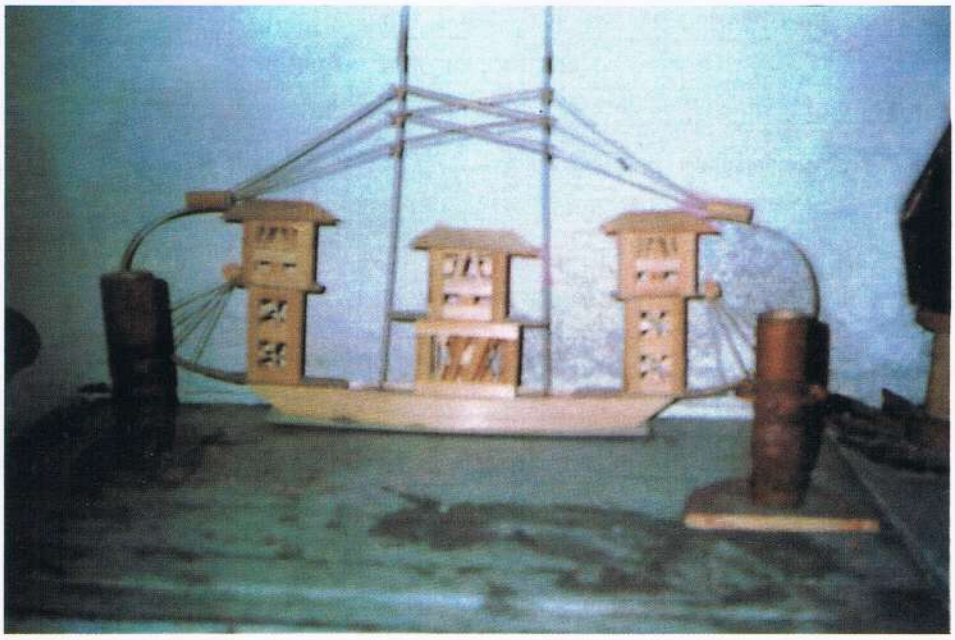

आधुनिक युग में महानगरीय व्यवस्था में बेंत का यह सामान खासा उपयोगी सिद्ध होता है। खूबसूरती के साथ कम्फर्ट व कम जगह घेरना इनकी खासियत है। यह कहीं भी रखे जा सकते हैं। घर में बने गार्डन में इनकी छटा देखते ही बनती है।

हल्के होने के कारण यह आरामदेह होते हैं और कहीं भी लाए, ले जाए जा सकते हैं। इनकी बारीक नक्काशी, बुनाई देखते ही बनती है। यह सौन्दर्य और उपयोगिता की एक मिसाल कायम करते हैं। इनमें कमी बिना इस काम को जाने कोई नहीं निकाल सकता। श्रमसाध्य, अथक परिश्रम युक्त और कला में पारंगतता मांगता यह हस्तशिल्प बेजोड़ नमूना है हमारी सभ्यता व संस्कृति का। पांच–छः हजार निम्नतम् से लेकर दस–बीस हजार तक में यह उत्पाद अपने आकार अनुसार बिकते हैं।

कला में एक कशिश होती है और यही नवीनता उसके सौन्दर्य में चार चांद लगा देती है किन्तु इन बेमिसाल कृतियों के पीछे जिन कारीगरों का प्रयास होता है वो अभी भी शोषण के शिकार हैं।

चूंकि बाजार में दुकानदार माल सप्लाई करता है और इन कारीगरों की पहुंच खरीददारों तक सीधे नहीं होती। इन कारीगरों को दुकानदार बहुत कम मजदूरी दे के अधिक मुनाफा उठा लेता है। सरकार को इन कारीगरों को संरक्षण देकर, इनके हुनर की प्रदर्शनी लगवाकर कच्चा माल इन्हें रियायती दरों पर उपलबध करवा कर इनको प्रोत्साहित करना चाहिए।

कुटीर एवं लघु उद्योगों के तहत यदि ये कारीगर संगठित हो सकें, इन्हें ऋण की सुविधा मिले और बिचौलियों का हस्तक्षेप कम हो तो यह एक सार्थक प्रयास होगा। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर बेंत का सामान बेचने का यदि एक मंच बनाया जाए और इसका संरक्षण किया जाए तो इन कारीगरों को एवं इस ग्रामीण हस्तशिल्प को सम्बल मिलेगा और हमारा यह हुनर सदा बचा रहेगा।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेल : sunnyharshit@yahoo.com

आदिशिल्प का गढ़ बस्तर

एल. मोहन कोठियाल

छत्तीसगढ़ के नए राज्य के रूप में उदय होने के उपरांत गुमनाम व उपेक्षित बस्तर की पहुंच बाहरी दुनिया के लिए खुलने से काफी जानकारी सामने आई है। इसका लाभ यहां के पर्यटन स्थलों के साथ हस्तशिल्प को भी मिला है। आदिवासी कलाकारों को प्रोत्साहन देने से लेकर व राज्य के शिल्पियों व लगातार शिल्पमेलों में प्रतिनिधित्व से बस्तर के शिल्प का प्रचार-प्रसार बढ़ा है। यहां पर निर्मित होने वाले शिल्प के अनूठेपन के प्रचार-प्रसार से लोगों की रुचि इस ओर जागृत होने से देश के विभिन्न भागों से लोग व हस्तशिल्प व्यवसायी अपनी पसंद के हस्तशिल्प डिजाइनों को बनवाने व खरीदने बस्तर आने लगे हैं।

वैसे तो देश के हर राज्य में हस्तशिल्प निर्मित वस्तुओं का निर्माण होता है किन्तु हस्तशिल्प का आदिस्वरूप छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में देखने में आता है। इसका मुख्य कारण बस्तर में हस्तशिल्प का निर्माण आदिवासियों की मान्यताओं व परम्पराओं से जुड़ा होना है। यह आदिवासी समाज में पीढ़ी–दर–पीढ़ी बनता आया है। इसका निर्माण आज भी उन्हीं पारम्परिक विधियों व सामग्री से किया जाता है जिस प्रकार से यह सदियों से होता आया है। प्राकृतिक रूप से मिलने वाली व सर्वसुलभ इस सामग्री में लकड़ी, बांस, लोहा, पीतल, कांसा, पत्थर, मिट्टी प्रमुख हैं। हालांकि शिल्प हेतु इस सामग्री का प्रयोग कई अन्य स्थानों पर भी होता है किन्तु बस्तर में निर्मित होने वाला शिल्प क्षेत्रों व राज्यों में बनाए जाने वाले हस्तशिल्प से एकदम भिन्न है। यहां के शिल्प की विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन आदिवासी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। यहां पर कांसे के शिल्प में तो सिंधु सभ्यता में मिली मूर्तियों से समानता भी मिलती है।

हालांकि पूरे देश में लगभग 12 हजार करोड़ रुपये का हस्तशिल्प बनता व बिकता है जिसमें छत्तीसगढ़ का योगदान अभी मात्र 50 करोड़ के आसपास ही है। कभी परम्परा के तौर पर उत्सव व खास अवसरों के लिए बनाये जाने वाला यह कार्य एक उद्यम का रूप ले चुका है और इससे लगभग 20 से 25 हजार लोगों की

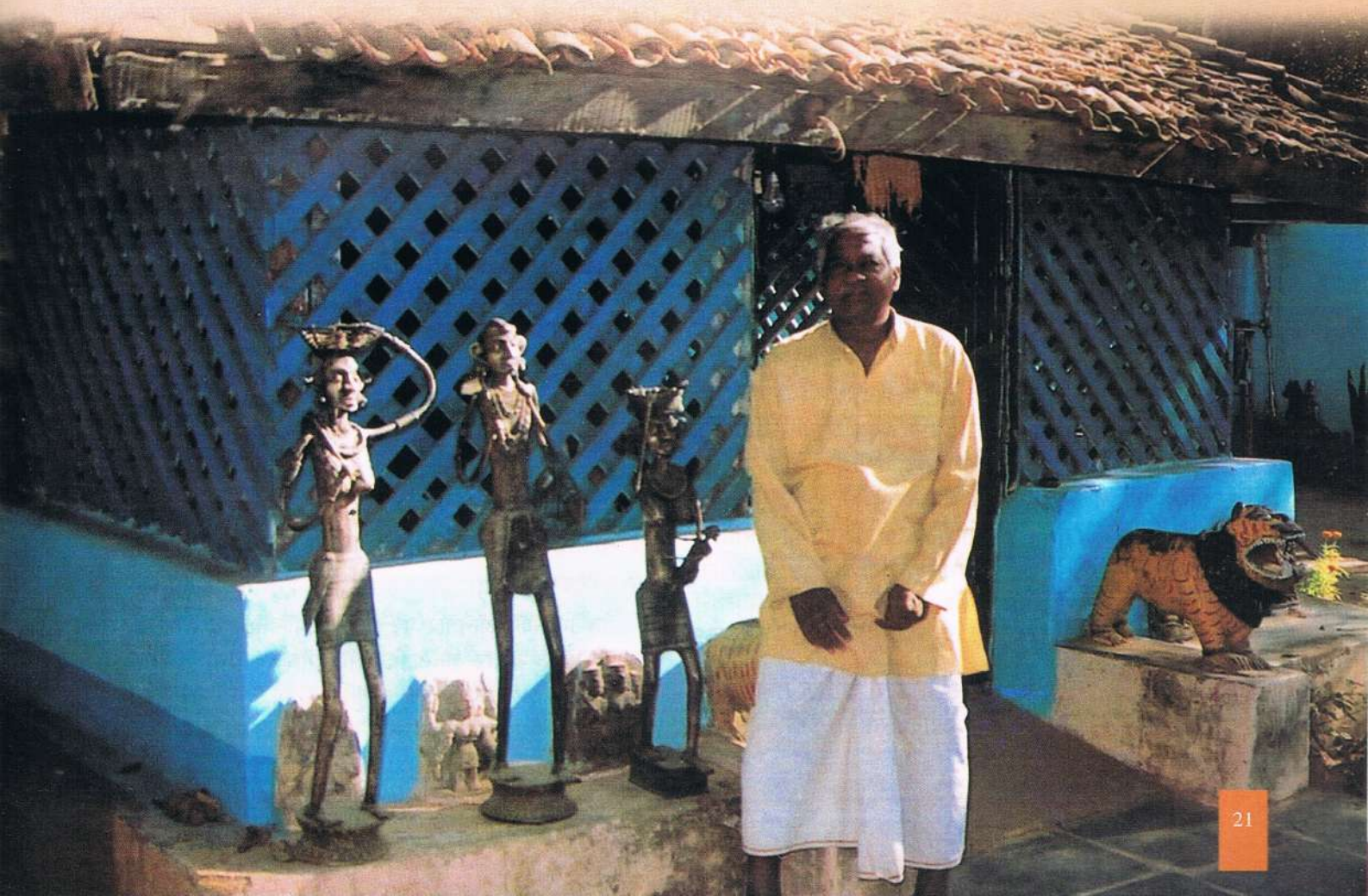

एक उद्यमी : कोण्डागांव

प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से आजीविका जुड़ चुकी है। राज्य बनने के बाद से इसमें लगातार विस्तार हो रहा है।

बस्तर जिले में हस्तशिल्प का कार्य यूं तो कई स्थानों पर होता है किन्तु यह उद्यम मुख्य रूप से कोण्डागांव तहसील में पड़ने वाले गांवों में अधिक केंद्रित है। जिले की दूसरी तहसील जगदलपुर में भी हस्तशिल्प बनता है। हस्तशिल्प बस्तर सम्भाग के अन्य जिलों नारायणपुर व दन्तेवाड़ा में भी निर्मित होता है। कोण्डागांव में हस्तशिल्प निर्माण का एक बेहद व्यवस्थित रूप देखने में आता है। अलग–अलग गांव में एक ही प्रकार का शिल्प बनता है। उदाहरणार्थ कोण्डागांव तहसील में डोकरा शिल्प (बेल मैटल) भेलावपदरपारा, करनपुर, बरकई, दहीकोंगा आदि गांवों में केंद्रित है। इसके सापेक्ष लौहशिल्प जामकोटपारा, किड़ई छिपड़ा व नन्जोड़ा में केंद्रित है। टैराकोटा शिल्प नगरनार, कुम्हारापारा में केंद्रित है जबकि देउरगांव में प्रस्तर शिल्प बनता है। इसके अतिरिक्त नारायणपुर में भी हस्तशिल्प का निर्माण होता है।

हस्तशिल्प में होने वाले लाभ को देखते हुए आदिवासी पृष्ठभूमि से हटकर अन्य लोग भी इस उद्यम को अपना रहे हैं। आज कोण्डागांव के आसपास लगभग 4 से 5 हजार लोग विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प का निर्माण कर रहे हैं। बड़े व दक्ष कारोबारियों के पास आर्डर की कमी नहीं होती है। उनके पास देश से ही नहीं अपितु विदेशों से भी नए डिज़ाइनों को बनाने की चुनौती भी आती है। सरकार द्वारा यहां पर हस्तशिल्प के लिए कोण्डागांव में आधारभूत सुविधा जुटाने का भी प्रयास किया गया है ताकि लघु उद्यमी इसे विधिपूर्वक संचालित कर सकें।

अनूठा धातुशिल्प डोकरा कला

लोकप्रियता के हिसाब से बस्तर में सबसे अधिक मांग धातु व काष्ठशिल्प की है। इनमें वहां की आदिवासी संस्कृति की अनूठी झलक दिखती है। धातु व काष्ठ शिल्प की अधिक मांग के पीछे इनका अधिक पारम्परिक, अनूठा व टिकाऊ होना है। इसके सापेक्ष टैराकोटा व बांस शिल्प के लाने ले जाने में सावधानी रखनी होती है।

धातुशिल्प बस्तर की एक पहचान है। बस्तर से संबंधित प्रचार सामग्री पर यदि कहीं यहां के सुप्रसिद्ध चित्रकोट प्रपात को दर्शाया जाता है तो वहीं उसमें धातुशिल्प को भी प्रदर्शित किया जाता है। यहां के बने कांसे (बेल मेटल) के शिल्प को सर्वाधिक पसंद किया जाता है जो पारम्परिक मोम नष्ट विधि से बनता है। इस विधि में हाथों का ही प्रयोग होता है। यदि कोई मशीन इसमें प्रयोग होती है तो वह होती है धातु पिघलाने के लिए भट्टी झोंकने के लिए घौंकनी।

कांसे से शिल्प निर्माण का यह तरीका बेहद निराला है जिसके तहत शिल्प का निर्माण लगभग दर्जन भर प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद होता है। सर्वप्रथम मिट्टी का ढांचा बनाया जाता है जिसके ऊपर काली मोम के धागों को इस प्रकार से लपेटा जाता है ताकि वह बनाये जाने वाली आकृति का रूप ले ले। तदोपरांत मोम से लिपटी आकृति को लाल चिकनी मिट्टी से ढक दिया जाता है जिससे मिट्टी की अंदरूनी सतह पर वस्तु की छाप उतर जाती है। इस छाप को स्थायित्व देने के लिए इसको ईंट की तरह भट्टी में पकाया जाता है जिससे अन्दर का मोम पिघलकर जल जाता है और मिट्टी में अन्दर उतरी छाप पकने से ठोस हो जाती है। इसके बाद इन गर्म मिट्टी के सांचों के ऊपर बनाए छिद्रों से पिघली धातु को अन्दर डाला जाता है। अन्दर पहुंचने पर यह पिघली धातु सांचे के अनुसार आकार लेकर ठोस हो जाती है। उसके बाद ठण्डा होने पर बाहरी मिट्टी के कठोर आवरण को तोड़कर हटा दिया जाता है और टूटने पर निकलती है ठोस धातु की बनी सुन्दर संरचना। उनकी फिनिशिंग के बाद उनमें निखार आ जाता है। शिल्प का रंग एकदम पीतल जैसा पीला नहीं होता है बल्कि यह थोड़ा गहरापन लिए होती है जिससे वह कलाकृति और अधिक आकर्षक लगती है। इसके लिए प्राकृतिक मोम की आपूर्ति स्थानीय तौर पर होती है। पीतल की आपूर्ति स्थानीय तौर पर व बाहरी राज्यों से टूटे–फूटे, पीतल के बर्तनों से ही होती है जो बहुत ही छोटे स्तर के कारोबारियों द्वारा होती है।

लौह शिल्प

लौह जिसका आमतौर पर हस्तशिल्प बनाने में कम ही प्रयोग होता है किन्तु बस्तर का आदिवासी समाज सदियों से लौह शिल्प निर्माण करता आया है। इन आकृतियों को बेचने का काम पहले उनके अपने समाज में ही केन्द्रित था किन्तु जबसे उनके लौहशिल्प

के सौन्दर्य पर पारखियों की नजर पड़ी तब से इसकी मांग बढ़ने से इस कारोबार को भी बल मिला। इसके लिए काले ढलवां लोहे का प्रयोग किया जाता है जिसमें जंग लगने की प्रक्रिया काफी धीमी होती है। इसमें लोहे को डालकर मनचाही आकृति दी जाती है। इनमें बनाए जाने वाली ज्यादातर आकृतियों में पेड़–पौधों, पशु–पक्षी, स्त्री–पुरुष, आदिवासियों व परम्पराओं को दर्शाया जाता है। लगने को यह आकृतियां अजीबो–गरीब लगती हैं किन्तु इनमें छिपा सौन्दर्य बोध तब होता है जब हमें उनको कहीं देखने का अवसर मिलता है। आज इस लोहे से कई–कई प्रकार की वस्तुएं बनने लगी हैं। राज्य में लोहे के भण्डार होने से इसका कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो जाता है। डोकरा कला के सापेक्ष लौहशिल्प निर्माण आसान है।

काष्ठ शिल्प के नए प्रयोग

बस्तर का काष्ठ शिल्प भी किसी सिरे से कम शानदार नहीं है। बस्तर में यहीं बना काष्ठशिल्प देश–विदेश के हस्तशिल्प मेलों में आए दिन जाता रहता है। सामग्री निर्माण हेतु मुख्य रूप से सागौन की लकड़ी का इस्तेमाल होता है। कुछ कार्यों में सिउना व शीशम का भी प्रयोग होता है जो अधिक टिकाऊ होती है। यहां के शिल्पी फोटो देखकर लकड़ी पर कैसी भी आकृति को उकेरने बस्तर के जिला मुख्यालय जगदलपुर के मूर्ति बाजार में लकड़ी की बनी आकृतियां व रूपांकर हर किसी का एकबारगी ध्यान खींच लेती हैं। काष्ठशिल्प का यह उद्यम जगदलपुर व आसपास केन्द्रित है। राज्य बनने के उपरांत यहां पर काष्ठशिल्प निर्माण बढ़ा है। राज्य बनने से पूर्व तक यहां के मूर्ति बाजार में काष्ठशिल्प की मात्र चार–छह दुकानें ही होती थीं वहीं आज इनकी संख्या तीन दर्जन से अधिक हो चली है। इनमें आपको बस्तर आर्ट्स, धार्मिक मूर्तियां तो नजर आती ही हैं साथ में मार्डन आर्ट्स भी देखने को मिल जाता है। बस्तर आर्ट्स में आदिशिल्प की छाप देखने को मिलती है जिनमें उनका रहन–सहन, नृत्य, शिकार के उपकरण, तीरकमान, कुल्हाड़ी, मृतक स्तम्भ, घोटुल (युवा गृह), पेड़ आदि देखने में आते हैं।

सरकार के द्वारा भी हस्तशिल्प के प्रशिक्षण पर जोर देने से अब लोग इस विद्या में आगे आ रहे हैं। अब नव कलाकारों को इनकी कृतियों में और अधिक निखार लाने के गुर सिखाये जाते हैं ताकि प्रतिस्पर्धा में वे पीछे न रहें। इसी बाजार में एक कारोबारी जी.के. दास बताते हैं कि लोगों का रुझान बस्तर आर्ट्स की ओर अधिक होने के कारण अब वे इसका प्रयोग फर्नीचरों में करने लगे हैं। डबल बेड से लेकर सोफा, ड्रेसिंग टेबल, डाइनिंग टेबल, कुर्सियों आदि को एकबारगी देख कोई भी इन नये प्रयोगों की प्रशंसा किये बगैर नहीं रह सकता है। जगदलपुर के मूर्ति बाजार के विकास में व इस कला के संरक्षण में यहां के उद्यमी भट्टाचार्य की पहल ने इस विधा को एक दिशा प्रदान की। काष्ठशिल्प का कार्य मुख्य रूप से जगदलपुर व उसके आसपास केन्द्रित है किन्तु छुट–पुट कुछ आदिवासी शिल्पी पर्यटक केन्द्रों के आसपास भी अपनी सामग्री को बेचते मिल जाते हैं।

बेल मेटल की प्रतिमाएं

टैराकोटा व टसर

बस्तर का टैराकोटा शिल्प भी कम सुंदर नहीं है। जिले के नगरनार व कुम्हारपाड़ा टैराकोटा शिल्प के लिए मशहूर हैं। यहां पर कारीगर बेहर सुंदर आकृतियां बनाते हैं जिससे उनमें यह अन्तर करना मुश्किल हो जाता है कि वे मिट्टी से बनी हैं या लकड़ी से। यह सामग्री विभिन्न पर्वों पर बिकती नजर आती है। इसके अलावा बस्तर कोसा सिल्क (टसर) के उत्पादन का प्रमुख केन्द्र है। इस रेशम से धागा निकालने से लेकर बुनाई, कताई और रंगाई का कार्य यही पर होता है। इससे मुख्य रूप से कपड़े व साड़ियां बनती हैं। हथकरघों से निर्मित इस कपड़े की काफी मांग रहती है।

बस्तर में नारायणपुर भी हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध है जहां शिल्पग्राम में कई पर्यटक आते हैं। अव्यवस्थित विपणन के अलावा राज्य में व राज्य से बाहर शबरी शोरूमों में यह शिल्प बिकता है जो इनको लघु व्यवसायों से खरीदकर बेचते हैं। राज्य में कुछ स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस दिशा में कार्य कर रही हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

नए मंत्रियों ने संभाला ग्रामीण विकास मंत्रालय का कार्यभार

नए ग्रामीण विकास मंत्री डॉ. सी.पी. जोशी का अभिनन्दन करते हुए सचिव डॉ. रीता शर्मा

डॉ. चन्द्र प्रकाश जोशी पहली बार 15वीं लोकसभा के सदस्य बने हैं। इस 58 वर्षीय नेता ने राजस्थान के भीलवाड़ा से चुनाव जीता है। इन्होंने मोहन लाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, राजस्थान से मनोविज्ञान में पी.एच.डी. तथा भौतिकी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है और विधि में भी स्नातक उपाधि ली है।

डॉ. जोशी ने 70 के दशक में एक छात्र नेता के रूप में अपने राजनीतिक सफर की शुरुआत की थी और 1980 में पहली बार नाथद्वारा, राजस्थान से विधायक के रूप में निर्वाचित हुए। वे राजस्थान विधानसभा में चार कार्यकाल के विधायक रहे हैं और उन्होंने 1998 से 2003 के बीच पिछली सरकार में राज्य केबिनेट मंत्री के रूप में अपना कार्य किया है। उनके पास शिक्षा, पंचायती राज, ग्रामीण विकास, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी और आयोजन सहित सामाजिक क्षेत्र के विविध फोर्टफोलियो थे। उनकी प्रमुख उपलब्धियों में से एक है – 'बाघेरी नाका परियोजना।' इस परियोजना का ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की उपलब्धता को बढ़ाने में काफी अधिक योगदान रहा है। इसके अलावा, उन्होंने राजस्थान में कंप्यूटर शिक्षा की शुरुआत की। केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होने से पहले डॉ० जोशी राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी (आरपीसीसी) के अध्यक्ष थे।

डॉ० जोशी का जन्म राजस्थान के राजसमंद जिले के कुंवरिया गांव में 29 जुलाई, 1950 को हुआ था। श्रीमती शीला जोशी उनकी माता और श्री भूदेव प्रसाद जोशी उनके पिता हैं। डॉ० हेमलता जोशी उनकी पत्नी हैं और वे भूगोल की प्रोफेसर हैं। उनका एक पुत्र श्री हिमांशु जोशी है।

डॉ० जोशी के मित्र उन्हें विद्वान, स्पष्टवादी और ईमानदार व्यक्ति के रूप में जानते हैं, "एक ऐसा व्यक्ति जो केवल भाषण देने और सार्वजनिक बहस करने की बजाय हमेशा व्यावहारिक रूप से लक्ष्य को पूरा करने की जरूरत पर बल देता है।" उनके सक्रिय नेतृत्व में ग्रामीण विकास मंत्रालय नई बुलंदी को छुएगा और मंत्रालय की नीतियां एवं कार्यक्रम ग्रामीण जनता तक पहुंचेंगे।

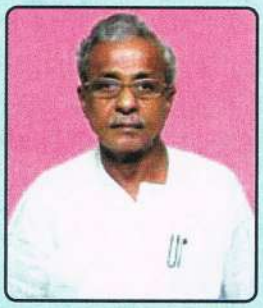

श्री शिशिर अधिकारी
ग्रामीण विकास राज्यमंत्री

तृणमूल कांग्रेस के श्री शिशिर अधिकारी कांठी लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से पहली बार सांसद निर्वाचित हुए हैं। इससे पहले वे पश्चिम बंगाल विधानसभा में विधायक थे।

श्री प्रदीप जैन
ग्रामीण विकास राज्यमंत्री

इंडियन नेशनल कांग्रेस के श्री प्रदीप जैन झांसी लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से पहली बार सांसद निर्वाचित हुए हैं। वे 1996 में उत्तर प्रदेश कांग्रेस के नगर अध्यक्ष बने थे।

सुश्री अगाथा संगमा
ग्रामीण विकास राज्यमंत्री

नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) की सुश्री अगाथा संगमा मेघालय के तुरा संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा में दूसरी बार चुनकर आई हैं। वे सबसे युवा सांसद हैं।

ग्रामीण शिल्पियों की कल्याणकारी योजनाएं

राजीव गांधी शिल्पी स्वास्थ्य बीमा योजना

राजीव गांधी स्वास्थ्य बीमा योजना का उद्देश्य कारीगर समुदाय की देश में सबसे अच्छी स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की पहुंच बनाने के लिए उसको वित्तीय रूप से सक्षम बनाना है। इस स्कीम में न केवल कारीगरों बल्कि परिवार के अन्य तीन सदस्यों जिसमें पत्नी, आश्रित माता–पिता तथा बच्चे शामिल हैं, को कवर किया गया है। सभी शिल्पी चाहे वे पुरुष अथवा महिला हों, जिनकी आयु एक दिन से 80 वर्ष तक के बीच हो, राजीव गांधी शिल्पी स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत कवर किए जाने के पात्र होंगे।

हस्तशिल्प कारीगरों के लिए बीमा योजना

हस्तशिल्प कारीगरों के लिए बीमा योजना का उद्देश्य 18–60 वर्ष के बीच के आयु समूह, चाहे पुरुष अथवा महिला, के हस्तशिल्प कारीगरों को स्वास्थ्य बीमा मुहैया कराना है। 60 वर्ष के बीच के सभी शिल्पी, चाहे पुरुष हो या महिला, हस्तशिल्प कारीगरों के लिए बीमा योजना के अंतर्गत कवर किए जाने के पात्र होंगे। यह योजना चालू वित्त वर्ष 2007–08 के दौरान 52.03 करोड़ रुपए (संशोधित) के निर्धारित बजट परिव्यय के साथ अनुमोदित एवं कार्यान्वयन के लिए शुरू की गई है। आठ लाख कारीगर परिवारों को स्वास्थ्य बीमा के अंतर्गत कवर करते हुए वर्ष 2007–08 (दिसम्बर, 2007 तक) आईसीआईसीआई, लोम्बार्ड को 20.34 करोड़ रुपए की राशि निर्मुक्त की गई है। वर्ष 2007–08 के दौरान दिसम्बर, 07 तक राजीव गांधी शिल्पी स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत स्वास्थ्य देखभाल के लिए अब तक 51919 कारीगर परिवारों को कवर किया गया तथा बीमा योजना के अंतर्गत जीवन बीमा के लिए 49843 कारीगरों को कवर किया गया।

प्रतिभा के धनी सोमपुरा शिल्पकार

डॉ. अलका रस्तौगी 'अनु'

हस्तशिल्प के माध्यम से किसी देश की संस्कृति का बोध होता है। भारत में लगभग 200 में से एक व्यक्ति शिल्पी हैं। हम प्रति दशक 10 प्रतिशत कलाविद् खो रहे हैं। अपनी इस सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने में चिन्तन, सजगता और क्रियान्वयन से योगदान का समय है। सृजन से उपजा सुख ही वास्तविक आनन्द हो सकता है। भारत में कृषि के बाद दूसरा प्रमुख रोजगार क्षेत्र शिल्प का है।

भारतीय हस्तशिल्प उद्योग भारत की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न अंग है। बेजान प्रतीत होते पत्थर में साधारण उपकरण किन्तु अद्भुत कलाकौशल युक्त हाथों से कारीगर न केवल जान डाल देते हैं बल्कि भारतीय संस्कृति की अमिट छाप भी अंकित कर देते हैं। संगमरमर पर उत्कृष्ट पच्चिकारी के लिए 'ताजमहल' को भारतीय पर्यटन उद्योग का सबसे मूल्यवान ब्राण्ड समझा जाना इसी हस्तशिल्प की प्रशंसा है। पत्थरों को तराशना, उनसे खम्बे, छतें, मेहराब, तोरणद्वार आदि द्वारा खजुराहो, कोणार्क, मदुरै, दिलवाड़ा के मंदिरों के माध्यम से स्वर्गानुभूति कराना भारतीय कला का बेजोड़ नमूना है।

भारतीय मूर्तिकला सैंकड़ों वर्षों से हस्तशिल्प के क्षेत्रक के रूप में स्थापित है। हस्तशिल्प का अभिप्राय है, हाथ से बना हुआ। पूर्णरूपेण हाथ से काम करते हुए देश के विभिन्न भागों में बसे कारीगर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध पत्थर, धातु, वनस्पति, लकड़ी आदि से खिलौने, पलंग, चौखट, फर्नीचर, मूर्तियों, सजावट की वस्तुओं का निर्माण करते आए हैं। हस्तशिल्प देशी परंपरा का हिस्सा है। हस्तशिल्प के एक उत्पाद के रूप में मूर्तियां मनुष्य की आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति के साथ–साथ विविधता लिए हुए धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की मूर्त प्रस्तुति भी है।

राजस्थान राज्य के अरावली पर्वतश्रेणी एवं पर्वतीय प्रदेश वाले भौगोलिक क्षेत्र, सुदूर दक्षिण में स्थित जनजातीय बहुल बांसवाड़ा के 'वागड़ शिल्प' ने मूर्तिकला के माध्यम से विश्व भर में अपनी

पहचान कायम की है। यहां भगवान विश्वकर्मा की विरासत आज भी शिल्पकारों की साधना बनी हुई है। विश्वकर्मा का शिल्प ही भारतीय कला में सौन्दर्य बनकर प्रकट हुआ है। विश्वकर्मा के मानस पुत्रों ने शिल्पकला के विविध आयाम दिए हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्र बांसवाड़ा से 15 कि.मी. दूर पश्चिम दिशा में अवस्थित 'तलवाड़ा' ग्राम में शिल्पियों से सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति जानने हेतु सर्वे किया गया।

देश के मानचित्र में तलवाड़ा का मूर्तिशिल्प अपनी पहचान बनाने में सफल हुआ है, फिर वे कौन से कारक हैं जिनसे अगली पीढ़ी इस शिल्प कर्म से स्वयं को दूर महसूस करने लगी है? विश्व प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के शिल्पियों द्वारा निर्मित बेमिसाल शिल्प बाजार में उपेक्षित क्यों है?

दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान में 'पश्चिमी शैली' सम्बन्धी विचारों में भिन्नता है। इस संक्रमणयुगीन कला पर गुप्तकालीन प्रभाव निर्विवाद है। इस युग की सुन्दरतम मूर्तियां अंझरा, डूंगरपुर, जगत आदि स्थानों से मिली हैं। वागड़ (बांसवाड़ा, डूंगरपुर) की अधिकांश मूर्तियां 'परेवा' पत्थर की हैं। यह पत्थर गहरा नीला अथवा हरित नीला या फिरोजी रंग का है। रंग के अतिरिक्त इस पत्थर की दूसरी विशेषता इसकी कोमलता है। यहां के सोमपुरा शिल्पकार मूलतः गुजरात के वेरावल व पाटण क्षेत्र से आए हैं। 11 वीं शताब्दी में मोहम्मद गजनवी के वेरावल के सोमनाथ महादेव मंदिर पर आक्रमण के समय ये शिल्पकार विस्थापित होकर दक्षिण राजस्थान के वागड़ अंचल में आ बसे। इस अंचल के प्रख्यात शिल्पियों में गुलाबजी, डूंगरभाई, लक्ष्मीचंद भाई सोमपुरा उल्लेखनीय हैं। छैनी, हथौड़ी से बेजान पत्थरों से उभरे देवी, देवताओं से इन शिल्पियों ने सीमा पार भी अपनी पहचान बनाई है। गुजरात के ऐतिहासिक सोमनाथ मंदिर से लेकर अक्षरधाम तक, मुंबई के वीटी स्टेशन से लंदन के स्वामीनारायण मंदिर तक इन शिल्पियों की कला ने धाक जमाई है। कुछ धार्मिक संस्थाओं ने लंदन, शिकागो, ह्यूस्टन, टोरंटो, एटलांटा सहित कई स्थानों पर मंदिर निर्माण करवाए। इन मंदिरों के लिए पत्थर की गढ़ाई वागड़ क्षेत्र में हुई। यहां के कलाकार इन शहरों में गए और अपने हुनर से बेजान पत्थरों में प्राण डाले।

वागड़ शिल्प का उदाहरण

छोटी काशी के नाम से प्रसिद्ध जनजातीय बहुलता के जिले बांसवाड़ा में संगमरमर, काले पत्थर, परेवा पत्थर को तराशकर सृजन करते शिल्पियों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि जीवन्त शिल्प के सुख को अनुभव करने वाले कलामर्मज्ञ मौजूद हैं, किन्तु सृजनकर्ता कहीं विलुप्त हैं। शिल्पी कौन हैं? उनकी आकांक्षाएं क्या हैं? सृजन से विक्रय तक की यात्रा के पड़ाव क्या हैं? वैश्वीकरण, औद्योगिकीकरण के मौजूदा दौर में वागड़ के शिल्पी कहां खड़े हैं? सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति की जानकारी हेतु तलवाड़ा क्षेत्र में किए गए सर्वे द्वारा ज्ञात हुआ कि अधिकांश शिल्पी जिले के मेलों, शिल्प संस्थानों तक में भी अपनी कला का प्रदर्शन कर पाने में सक्षम नहीं हैं। अपने परिवेश में

परिचय से वंचित शिल्पकार यह नहीं जानते कि वे भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

1991 में जिला स्तरीय पुरस्कार प्राप्त श्री प्रभाशंकर सोमपुरा के अनुसार कला की समाज में प्रतिष्ठा है किन्तु जीवनयापन हेतु आय होना भी आवश्यक है। बड़ी मूर्तियां इनकी विशिष्टता हैं। इन मूर्तियों में संस्कृति की झलक है।

महादेव मूर्ति आर्ट के श्री चेतन उपाध्याय के अनुसार उनके दादाजी मूर्तिकला में पारंगत थे। अध्यापक पिता ने मूर्ति निर्माण से नहीं रोका। चेतन को इस कार्य में प्रतिष्ठा अनुभव होती है। विजिटिंग कार्ड, मोबाइल होने पर भी 200 रुपये प्रतिदिन की आय से परिवार का पालन–पोषण कठिन प्रतीत होता है। 2001 में जिला स्तरीय पुरस्कार प्राप्त चेतन ने अपनी पुत्री को कम्प्यूटर सिखाया है। वे संतान को मूर्तिकार नहीं बनाना चाहते, कम आय के कारण चेतन ने यह मंशा जताई।

गायत्री मूर्ति आर्ट के मूर्तिकार श्री धुलजी भाई सोमपुरा के परिवार में 8 सदस्य हैं। गुजरात में 7 वर्ष अम्बाजी मंदिर में नौकरी करने वाले धुलजी भाई मराठी, गुजराती, हिन्दी भाषा सरलता से बोल लेते हैं। बैंक से 25000 रुपये का कर्ज लिया है जिससे मूर्तियों हेतु पत्थर क्रय कर सकें। वे मूर्तियों के विक्रय हेतु दिल्ली, जोधपुर, जयपुर गए किन्तु यात्रा व्यय की अधिकता से वे अब केवल ऑर्डर पर ही मूर्तियां बनाते हैं। पुत्र धर्मेन्द्र सोमपुरा को

राज्यपाल पुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूर्ति बनाने में व्यस्त धर्मेन्द्र को देखकर उसकी कला के प्रति श्रद्धा समझी जा सकती हैं।

42 वर्षीय श्री नारायण लाल सोमपुरा ने मूर्तिकारों का सामान्य जन से अलगाव महसूस करते हुए अपनी व्यथा इस रूप में व्यक्त की 'रुपया पैसा तो है, पर ये जो उड़ता हुआ पाउडर है उससे इस छोटी–सी दुकान में बच पाना मुश्किल है। 1988 में मुझे राज्यपाल पुरस्कार मिला, 500 रुपये से 50,000 रुपये की आमदनी भी हो सकती है पर बच्चे सीखना ही नहीं चाहते। समाज में हम किसमें शामिल हैं? मजदूर नहीं, कृषि मजदूर नहीं, केवल मूर्तिकार होने से कोई पहचान नहीं.....'।

तलवाड़ा में सोमपुरा शिल्पियों के लगभग 70 परिवार हैं। इनमें से 43 परिवार पूर्णतः मूर्ति निर्माण और विक्रय पर निर्भर हैं। इनसे हुई बातचीत से कुछ समस्याएं ज्ञात हुईं, जिन्हें नीति निर्माताओं द्वारा समझा जाना आवश्यक है।

- मूर्ति निर्माण में लगभग पांच माह का समय लगता है, एक मूर्ति से होने वाली 8000 से 10,000 तक की आय भी प्रतिमाह 1500–2000 से अधिक नहीं है, जो कि परिवार के पालन पोषण हेतु अपर्याप्त है।
- अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समुचित सम्मान मिलने पर भी मूर्तिकार अपनी मूर्तियां स्वयं विक्रय कर पाने की स्थिति में नहीं हैं। मीडिया, ई–सर्विस, सम्पर्क सूत्रों के अभाव से वे मात्र पेट भरने तक ही अपनी कला को सीमित किए हैं।

- असंगठित क्षेत्र से सम्बद्ध होने पर भी उन्हें किसी सरकारी योजना का लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। कृषि मजदूर अथवा मजदूर किसी श्रेणी में वे नहीं लिए जाते।
- क्लस्टर निर्माण हेतु की गई शुरुआत भी मात्र आश्वासनों तक ही सीमित रही। सरकारी प्रयासों के प्रति मूर्तिकारों में रोष व्याप्त मिला। खादी ग्रामोद्योग, शिल्प संस्थानों से उन्हें कोई राहत नहीं मिली।
- बाजार के अभाव से बिचौलियों द्वारा कम रुपया प्राप्त होना भी सामने आया। कम कीमत में क्रय की गई मूर्ति को अन्यत्र अधिक दाम में बेचे जाने की पीड़ा भी मूर्तिकार झेल रहे हैं।
- कम पूंजी, न्यून आय और बिना संपत्ति के ऋण उपलब्ध न हो पाने से मूर्तिकार मात्र ऑर्डर पर ही मूर्ति बनाने को बाध्य हैं।
- शिल्प निष्णात व्यक्तियों एवं शोधकर्ताओं के सम्पर्क का अभाव मूर्तिकारों को स्वयं द्वारा किए गए कार्य की आलोचना का अवसर भी प्रदान नहीं करता।

इन मूर्तिकारों से चर्चा से यह स्पष्ट हुआ कि बदले हुए बाजार, सूचना संसार, ई–सम्पर्क, विक्रय हेतु बाजार, देश–विदेश में मूर्ति विक्रय की संभावनाओं, शिल्प कर्म के उचित दाम आदि के सम्बन्ध में इनका ज्ञान नगण्य है। मूर्ति से जीवन्त सुख की रचना कर रहे ये मूर्तिकार केवल पेट भरने तक ही सीमित हैं।

(लेखिका समाजशास्त्र की व्याख्याता हैं)
ई–मेल : alkarastogi28@gmail.com

मृत्तिका पात्र उद्योग: समस्या व समाधान

डॉ. जयशंकर मिश्र

ग्रामीण अंचलों में फैली लोकशिल्प कलाओं में मृत्तिका पात्र उद्योग एक प्रमुख स्थान रखता है। रोजमर्रा से जुड़ा यह शिल्प उद्योग आज कला जगत में एक अलग व स्वतंत्र स्थान बना चुका है। इक्कीसवीं सदी के बदलते परिदृश्य में यह मात्र कुम्भकारों का पेशा व सामाजिक आवश्यकता की वस्तु न रहकर व्यापक व्यवसाय बन चुका है। आज इस प्लास्टिक युग में भी मृत्तिका पात्र के क्षेत्र में नित नये शोध व अन्वेषण किए जा रहे हैं।

मृत्तिका पात्र के प्रयोग का उदाहरण हमें मिस्र के पिरामिडों से लेकर हड़प्पा व मोहनजोदड़ो की सभ्यता से प्राप्त होता है। मानव उन दिनों में भी मृणमूर्ति का निर्माण कर उस पर ग्लेज (चिक्कण) करने का प्रयास करते थे। कल्पना करें यदि पात्र नहीं होता तो हमारा जीवन कैसा होता? पात्रों के बिना हम पशुवत् जीवन जीने को बाध्य होते। आज तो मनुष्यों के लिए ही नहीं अपितु पशु–पक्षियों के लिए भी पात्रों (बर्तनों) की आवश्यकता होती है। धार्मिक अनुष्ठान से लेकर मांगलिक कार्यों तक सभी अवसरों पर मृत्तिका पात्रों की आवश्यकता होती है। यह परम्परागत शिल्प आज ग्रामीण अंचलों से बाहर आ चुका है और प्रशंसकों के आकर्षण का केन्द्र बन चुका है। आज चित्रमूर्ति की भांति कलाकार अपनी भावनाओं को पात्रों के द्वारा भी व्यक्त करने लगे हैं। पात्रों के एक से एक आकर्षक व सुन्दर आकार व स्वरूप मन को मोहित कर लेते हैं। सभ्यता के इतनी विकसित अवस्था में भी मृत्तिका पात्र उद्योग मिट्टी पर ही आधारित है। यही कारण है कि आर्टिस्ट पॉटर के साथ ही साथ परम्परागत ग्रामीण कुम्भकार भी आज मटके व कुल्हड़ के निर्माण तक सीमित नहीं है। बल्कि, वह भी आज बदलते परिवेश में पात्रों को एक से एक नए आकर्षक व सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

मृत्तिका पात्र उद्योग

आज मृत्तिका पात्र उद्योग विश्वव्यापी है। चीन, जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड, कोरिया आदि के सुन्दर मृत्तिका पात्र से सभी परिचित हैं। इनमें सौंदर्य के साथ उपयोगिता का समन्वय होने के कारण आज इसकी व्यापारिक महत्ता भी बढ़ गयी है। आज इसे गृह व कुटीर अथवा लघु उद्योग का दर्जा प्राप्त है। कुम्हारों तथा विदेशों के बड़े–बड़े कल–कारखानों ने मृत्तिका शिल्प उद्योग को जीवित रख बढ़ावा देने में

सहयोग प्रदान किया। भारत सरकार ने भी विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा इसके विकास में सहयोग प्रदान किया। खुर्जा की सफेद मृत्तिका पात्र, चिन्हट पॉटरी, चुनार पॉटरी, निजामाबाद का अप्रलेपित पात्र, राजस्थान का नीली मृत्तिका पात्र, खानापुर व पोखरन पॉटरी, तमिलनाडु की कारीगरी, भद्रावती की सिरामिक आदि मृत्तिका पात्र उद्योग में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि भारतवर्ष में मृत्तिका पात्र उद्योग के विकास में कुछ सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थान निरंतर प्रयास कर रहे हैं तथापि हमारे ग्रामीण कुम्हार आज भी पात्र उद्योग के इस आधुनिक तकनीक व विकास से अनभिज्ञ अपने परम्परागत तौर–तरीकों से कार्य करने को विवश हैं।

21वीं सदी में आज मृत्तिका पात्र उद्योग पोर्सलिन व बोन चाइना तकनीक को प्राप्त कर चुका है, जबकि हमारे ग्रामीण कुम्भकार आज भी मृणमूर्ति तक ही सीमित हैं। पात्र निर्माण की विभिन्न आधुनिक विधि व तकनीक भी उनकी पहुंच से दूर है। इसी सन्दर्भ में मैंने एक लघु शोध परियोजना पर कार्य करते हुए उनकी मौलिक समस्याओं को पहचानने का प्रयास किया। सुदूर ग्रामीण अंचलों के कुम्हारों की समस्या कमोबेश एक–सी प्रतीत होती है। मृत्तिका पात्र उद्योग की समस्या आज यहां तक आ पहुंची है कि परम्परागत कुम्भकार आज अपने इस पेशे से विमुख होते जा रहे हैं। उनका जीवन स्तर, आर्थिक व सामाजिक स्थिति आज भी निम्नतम है। शायद तकनीकी विकास कुछ चुने संस्थानों व कारखानों तक ही सीमित रह जाता है। आज इस उद्योग से जो लोग जुड़े भी हैं उनकी समस्याएं बड़ी गंभीर हैं तथा इसके निदान की नितांत आवश्यकता है। यहां सर्वप्रथम इनकी कुछ समस्याओं व कठिनाइयों को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। तत्पश्चात् इसके निदान व समाधान को सुझाने का प्रयास किया जा रहा है।

समस्याओं पर एक दृष्टिपात

मृतिका पात्र उद्योग से संबंधित ग्रामीण कुम्भकारों की प्रमुख समस्याएं निम्नवत् हैं–

बढ़ती महंगाई

बढ़ती महंगाई के कारण कुम्भकार अपनी आय का एक छोटा हिस्सा ही इस पर लगा पाता है। क्रेता भी मिट्टी के पात्रों को मिट्टी के भाव ही खरीदना चाहता है, जिससे कुम्हारों द्वारा निर्मित सामग्रियों का उचित मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है।

प्लास्टिक का आगमन

प्लास्टिक के आगमन से मिट्टी पर पल रहे मृत्तिका पात्र उद्योग की प्रगति अवरुद्ध–सी हो गयी है। आज बाजार में मिट्टी के बर्तन, कुल्हड़, सिकोरे का स्थान प्लास्टिक व थर्मोकोल ने ले लिया है। सामान्य आय का व्यक्ति भी सुराही व मटके की जगह रेफ्रिजरेटर रखने लगा है। इससे मिट्टी से जुड़े पात्र उद्योग व कुम्भकारों पर कुठाराघात हुआ। आज मात्र अति आवश्यक परिस्थिति और पूजन–पाठ के लिए ही मिट्टी के पात्रों का क्रय किया जाता है। यद्यपि प्लास्टिक के कप व गिलास का प्रयोग हानिकारक व पर्यावरणीय दृष्टिकोण से प्रतिकूल है तथापि हम इसका प्रयोग करना सभ्यता की निशानी समझते हैं। इस तरह हमें निःसंदेह यह स्वीकार करना चाहिए कि प्लास्टिक व थर्मोकोल के आगमन से मृत्तिका पात्र उद्योग को एक जबर्दस्त धक्का लगा है।

नयी पीढ़ी की उदासीनता

मृत्तिका पात्र उद्योग के विकास में कमी का एक महत्वपूर्ण कारण निश्चित रूप से नयी पीढ़ी की उदासीनता है। आधुनिक जीवन के तड़क–भड़क, फैशन आदि की चकाचौंध में कुम्भकारों के बच्चे अपने परम्परागत पेशे को छोड़ नगर की ओर भागते हैं; जिस कारण वे परम्परागत पेशे से विमुख हो जाते हैं। शहर में जाकर भी उन्हें अशिक्षा व संकुचित ज्ञान के कारण मुंह की खानी पड़ती है। हाँ, कुछ अच्छे व मेधावी युवक नौकरी आदि प्राप्त करने में भी समर्थ हो जाते हैं, जिससे उनका जीवन–स्तर थोड़ा अवश्य सुधर जाता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश युवक मजदूरी कर किसी तरह अपना पेट भरते हैं।

मिट्टी की अनुपलब्धता

ग्रामीण कुम्भकारों की एक बड़ी समस्या मिट्टी प्राप्ति की है जिस पर इनका पूरा धंधा ही निर्भर है। मृत्तिका पात्र उद्योग के लिए लाल मिट्टी की आवश्यकता होती है, जो प्रायः तालाब से प्राप्त की जाती है, किन्तु जहां तालाब नहीं होता वहां टीले व खेतों की मिट्टी का ही प्रयोग किया जाता है। सामान्य रूप से कुम्हारों के पास उपयुक्त मिट्टी नहीं होती है और इस कारण उन्हें दूसरों का खेत, सरकारी पट्टे की भूमि और टीले तथा सार्वजनिक तालाबों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन स्थलों से उन्हें मिट्टी प्राप्ति में कठिनाई होती है। किसी और के खेतों से उन्हें मिट्टी खरीदनी पड़ती है तथा पट्टे की भूमि की अवधि समाप्त होने से उन्हें दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कई बार तो ऐसा भी देखा जाता है कि कुम्हारों के पट्टे की भूमि पर किसी और ने कब्जा कर रखा है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि परम्परागत कुम्हारों की एक बड़ी समस्या मिट्टी की अनुपलब्धता है, जिसका निदान अति आवश्यक है।

ईंधन की समस्या

ग्रामीण परम्परागत कुम्हारों के लिए अगली समस्या के रूप में ईंधन की समस्या आती है, जो मृत्तिका पात्र उद्योग को प्रभावित करती है। परम्परागत कुम्हार एक तो आवां में पात्रों को पकाते हैं, जिससे ऊर्जा का अपव्यय होता है तथा दूसरी ओर इसे पकाने के

लिए मुख्य रूप से लकड़ियों व कंडों का प्रयोग होता है। खासकर लकड़ियों की प्राप्ति की समस्या कठिन है। कुम्भकार जंगलों से अथवा बाजार से लकड़ी क्रय करते हैं, किन्तु वन विभाग की चौकसी व तत्परता (कानूनी अड़चन) से अब उन्हें जंगली लकड़ी प्राप्त होने में समस्या आती है तथा निर्धनता के कारण बाजारों से उपयुक्त लकड़ी क्रय नहीं कर सकते।

आधुनिक तकनीकों का अभाव

आज मृत्तिका पात्र उद्योग के आधुनिकतम युग में भी स्थानीय व ग्रामीण कुम्भकार अपने परंपरागत संसाधनों पर ही आधारित हैं। जहां पात्र निर्माण में आज पावरव्हील (विद्युत चाक) जिगर जॉली व अन्य मशीनों का प्रयोग होता है, वहां आज भी ये लोग मिट्टी, पत्थर व लकड़ी के चाक पर निर्भर हैं। यहां तक कि इनके पास सुधरी चाक (बाल बेयरिंग युक्त) भी नहीं होता।

अतः इस तरह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि मृत्तिका शिल्प से जुड़े परम्परागत कुम्भकारों की आय अत्यल्प होती है, जिस कारण से वह पात्र निर्माण की अन्य आधुनिक विधि व तकनीकों से भी अनभिज्ञ हैं।

प्रशिक्षण की समस्या

ग्रामीण परम्परागत कुम्हार प्रायः अशिक्षित ही होते हैं और न ही उन्हें पात्र निर्माण संबंधी कोई प्रशिक्षण प्राप्त होता है। वे लोग अपने सीमित ज्ञान के आधार पर ही पात्रों का निर्माण करते हैं। आज बदलते परिवेश में उन्हें भी मृत्तिका शिल्प उद्योग की आधुनिक तकनीकों की जानकारी प्रदान करने के संग उनके उन्मुखीकरण की आवश्यकता है।

बाजार की समस्या

ग्रामीण कुम्भकार प्रायः अपना सामान दरवाजे–दरवाजे जाकर बेचते हैं या फिर, क्रेता स्वयं उनसे खरीद ले जाते हैं। इनके लिए स्थानीय स्तर पर बाजार की समस्या बनी रहती है। उपरोक्त पेशे से जुड़ी समस्याओं के अतिरिक्त ग्रामीण कुम्भकारों में भी अन्य ग्रामीणों की भांति शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, बेरोजगारी, उत्पीड़न आदि समस्याएं व्याप्त हैं।

समाधान के प्रति सुझाव

मृत्तिका पात्र उद्योग से जुड़ी पूर्व में उद्धरित समस्याओं व कठिनाईयों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के पश्चात् कुछ बिन्दुओं को निम्नवत व्यक्त किया जा सकता है, जो इनके समाधान में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

उन्मुखीकरण कार्यक्रम

सर्वप्रथम उचित होगा कि इनके लिए समय–समय पर उन्मुखीकरण कार्यशाला का आयोजन किया जाए। इस कार्यक्रम के माध्यम से उनकी समस्याओं, कठिनाईयों तथा अपेक्षाओं का पता लगाया जाए, तत्पश्चात उनके लिए उन्मुखीकरण, प्रशिक्षण, कार्यशाला, प्रदर्शन आदि कार्यक्रम का आयोजन किया जा सकता है। साथ ही उन्हें वित्तीय सहायता प्रदायी संस्थानों की ओर भी

अभिप्रेरित किया जाना चाहिए। ऐसी कार्यशाला एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को पंचायत, ब्लॉक एवं जिला स्तर पर आयोजित किया जाना उचित होगा।

आर्थिक सहयोग

आर्थिक सहयोग के द्वारा मृत्तिका शिल्प उद्योग को प्रोत्साहित किया जा सकता है। उन्हें कम लागत से अधिक उत्पाद प्राप्त करने की विधि को भी बताना आवश्यक होगा। यथा भट्ठी के निर्माण से ऊष्मा का क्षय रोका जा सकता है। साथ ही परम्परागत सामग्री निर्माण के साथ उन्हें अन्य आकर्षक सामग्रियों के निर्माण की ओर भी ध्यान दिलाना चाहिए।

मृत्तिका पात्र के उपयोग को बढ़ावा

इसके लिए हमें हानिकारक प्लास्टिक व थरमाकोल के बर्तनों के उपयोग पर अंकुश लगाना होगा जिससे मृत्तिका पात्र के प्रयोग व उद्योग को बढ़ावा व प्रोत्साहन मिल सकता है।

आधुनिक तकनीकों का समावेश

आधुनिक तकनीकों के समावेश से पात्र उद्योग को आकर्षक बनाया जा सकता है, जिससे नई पीढ़ी की उदासीनता को कम करने में सहायता मिल सकती है। विमुख हो रहे परम्परागत कुम्भकारों को सहयोग व संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

रेड क्ले ग्लेजिंग का प्रयोग

लाल मिट्टी अर्थात मृणमूर्ति के साथ रेड क्ले ग्लेजिंग (रक्त मृदा प्रलेपन) को अपनाया जाना चाहिए। संभव हो तो उन्हें चीनी मिट्टी अर्थात मृण मूर्ति के साथ रेड क्ले ग्लेजिंग (रक्त मृदा प्रलेयन) को अपनाया जाना चाहिए।

पात्र निर्माण की अन्य विधियों का प्रयोग

मृत्तिका पात्र उद्योग में सामग्री निर्माण हेतु परम्परागत चाक विधि के साथ अन्य विधियों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए। यथा स्लिप कास्टिंग (मिट्टी का पतला घोल) क्वाइल विधि, जिगर–जॉली पद्धति, मोल्डिंग कास्टिंग आदि विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

मिट्टी प्राप्ति में सहयोग

मिट्टी प्राप्ति ग्रामीण कुम्हारों की एक प्रमुख समस्या है। मृद्शिल्प हेतु प्रयुक्त मिट्टी इस उद्योग की प्राथमिक आवश्यकता है। इसके निराकरण हेतु इस उद्योग हेतु सरकारी टीले, तालाब आदि की जमीन निःशुल्क उपलब्ध करायी जानी चाहिए। खेतों आदि की अनुकूल मिट्टी को भी अत्यल्प दामों पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ईंधन प्राप्ति में सहयोग

परम्परागत कुम्भकारों की एक समस्या ईंधन की बनी रहती है। इसके लिए जंगली क्षेत्र के उद्योग के लिए जंगल से निःशुल्क सूखी लकड़ी को उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा मैदानी इलाके के लिए विकल्प के रूप में सस्ते दामों पर कोयले आदि उपलब्ध कराये जा सकते हैं।

बाजार की उपलब्धता

बाजार की समस्या का समाधान हमें मिलकर करना होगा। आकर्षक व सुन्दर सामग्री स्वयं क्रेता को आकर्षित कर सकती है और बाजार का निर्माण स्वतः हो सकता है। मृत्तिका पात्र के लिए स्थानीय स्तर पर सामुदायिक सहयोग से एक इम्पोरियम का निर्माण उचित रहेगा, जहां ये कलात्मक व नवीन पात्र रख सकते हैं। समय–समय पर जगह–जगह इनकी सामग्रियों की प्रदर्शनी का आयोजन भी उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

उपरोक्त बिन्दुओं का गम्भीरता से अध्ययन कर क्रियान्वयन से निश्चित ही मृत्तिका पात्र उद्योग से जुड़े परम्परागत कुम्हारों को एक नई दिशा व ऊर्जा मिल सकेगी। साथ ही ग्रामोन्नयन में सहायक इस विधा के अन्य आयामों यथा पात्र निर्माण के साथ टाइल्स, म्यूरल, खिलौने, मॉडल के निर्माण से भी इस विधा को समृद्ध व सृजनात्मक बनाया जा सकता है। आज इन सामग्रियों का एक विस्तृत बाजार उपलब्ध है।

उपसंहार

आज कला व शिल्प के प्रति शासन तथा लोगों का रूझान दिन–प्रति–दिन कम होता जा रहा है, जबकि पारम्परिक पेशे व लघु उद्योग के वास्तविक विकास पर ही गांव, समाज व राष्ट्र की प्रगति निर्भर है। हर क्षेत्र विशेष की स्थानीय कलाशिल्प की पहचान कर उसे प्रोत्साहन व सहायता प्रदान कर हम सामाजिक व आर्थिक विकास की गति को बढ़ा सकते हैं। गांव के सभी व्यक्ति वास्तविक और प्रौद्योगिक अनुभव रखते हैं तथा श्रम साधना में भी धैर्यवान होते हैं। आवश्यकता मात्र इस बात की है कि हम उन लुप्त व गौण हो रही कला थाती की पहचान कर उसे सहयोग व संरक्षण प्रदान करें, जिससे ग्रामीण जनता का जीवन स्तर ऊपर उठ सके।

घरेलू उद्योग के रूप में मृत्तिका शिल्प को सहज ही विकसित किया जा सकता है, जिससे अनेक कलाकारों व शिल्पकारों का भली–भांति जीवन निर्वहन संभव हो। हमारे देश की नई पीढ़ी में प्रतिभा का अभाव नहीं है। सही दिशा–निर्देश व सहज सुविधाएं मिलने पर इस मृत्तिका शिल्प उद्योग का अद्भुत विकास करने में हमारे देश का नवोदित शिल्पकार पूर्णतया समर्थ व सक्षम है।

(लेखक महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट में व्यावसायिक कला विभाग में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं)
ई–मेल : artistjsm@sify.com

हस्तशिल्प उद्योग के समक्ष चुनौतियां

डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी

भारत में हस्तशिल्प का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। शिल्पकारों की पहचान व्यक्तिगत नहीं अपितु शिल्पगत होती है। देश में शिल्प के विविध स्वरूप हैं और शिल्पकार देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। हस्तशिल्प अब भारत सरकार के वस्त्र मंत्रालय के अंतर्गत है। शिल्प और शिल्पकारों का विकास इसका एक प्रमुख आयाम है। विकास आयुक्त (हस्तशिल्प) के कार्यालय से हस्तशिल्प विकास की योजनाएं तैयार की जाती हैं। हस्तशिल्प के आकार एवं महत्व को प्रदर्शित करने वाले आंकड़ों की कमी है। हस्तशिल्प का असंगठित स्वरूप इस समस्या को अधिक जटिल बना देता है।

भारत में आदिकाल से हस्तशिल्प आध्यात्मिक एवं रचनात्मक सामर्थ्य की अभिव्यक्ति रही है। ऋग्वेद से लेकर समस्त परवर्ती साहित्य में, विकास के प्रत्येक चरण में, देश के प्रत्येक अंचल में हस्तशिल्प का उल्लेख रहा है। हस्तशिल्प के उत्पाद एक ओर समाज की दैनिक जरूरतों को पूरा करने वाले होते हैं और दूसरी ओर से चित्त को सुखमय अवस्था में ला देते हैं। परिवार एवं समारोहों में शिल्प उत्पाद विशिष्ट स्थान पाते हैं। इसीलिए शिल्प उत्पादों की गणना श्रेष्ठ उत्पादों की कोटि में की जाती है। हस्तशिल्प उत्पाद वे हैं जो शिल्पकारों की रचनाधर्मिता से न्यूनतम उपकरणों का प्रयोग करते हुए स्थानीय कच्चे माल से हस्तनिर्मित होते हैं। हस्तशिल्प का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हस्तशिल्प उत्पादों के माध्यम से शिल्पकार अपने कौशल और दक्षता का भी प्रदर्शन करते हैं।

बनारस, चन्देरी, कांजीवरम, पोचमपल्ली की साड़ियां; मैसूर उड़ीसा, असम आदि स्थानों के विविध सिल्क उत्पाद; कश्मीरी शाल, मधुबनी छपाई, जोधपुर की बंधेज साड़ियां, मुरादाबाद के बर्तन; सहारनपुर की लकड़ी पर नक्काशीदार फर्नीचर; फिरोजाबाद की कांच की चूड़ियां, मथुरा की मूर्तियां आदि हस्तशिल्प के ऐसे उदाहरण हैं जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज में अपनी उपादेयता के साक्षी हैं। ढाका की मलमल तो विश्वविख्यात रही है। उसकी

बारीकी इस स्तर की रही है कि उसे सात तह करके पहनने पर भी पारदर्शिता बनी रहती थी। यह उल्लेख है कि अरब का एक व्यापारी 851 ई. में कालीकट आया। कालीकट के वस्त्रशिल्प को देखकर उसने अपनी डायरी में लिखा कि 'यहां असामान्य रूप से सुन्दर परिधान तैयार किए जाते हैं। उसने यह भी उल्लेख किया कि ऐसे परिधान अन्यत्र नहीं तैयार किए जाते। प्राचीन गांवों में कृषि, शिल्प और कुटीर उद्योगों का अद्‌भुत समन्वय था। भारत में खेती की भांति शिल्पकारी एक जीवन पद्धति रही है। शिल्पकार इसके माध्यम से उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करते थे और उत्पादित वस्तुओं के माध्यम से अपनी सर्जकता भी प्रदर्शित करते थे। भारतीय शिल्प का बाजार दूर–दूर तक था। सिल्क रूट और स्पाइस रूट के माध्यम से विदेश जाते थे। फ्रांस पर तो कश्मीरी शाल का जादुई प्रभाव था।

प्रत्येक कालखण्ड में देश में विभिन्न स्थानों पर शासक और अग्रणी लोगों द्वारा हस्तशिल्प को प्रश्रय दिया जाता रहा है। अन्य देशों में भी इन उत्पादों की व्यापक सामाजिक स्वीकृति रही है। यह माना जाता है कि चोल शासनकाल कांस्य मूर्ति निर्माण का स्वर्ण युग रहा है। खजुराहो, कोणार्क, दिलवारा एवं दक्षिण भारत के मंदिर शिल्पकारों की उत्कृष्ट रचना के उदाहरण हैं।

ताजमहल हस्तशिल्प की एक मिसाल है। हस्तशिल्प और ग्रामोद्योग महात्मा गांधी की अर्थरचना के आधार थे। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हस्तशिल्प भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत है। देश में शिल्प उत्पादों के स्थान सम्बद्ध ब्रांड नामों के अतिरिक्त अनेक शिल्प उत्पाद प्रत्येक क्षेत्र में तैयार किए जाते हैं। इनका उत्पादन निगमीय आधार पर नहीं अपितु असंगठित शिल्पकारों द्वारा किया जाता है। शिल्पकार सम्पूर्ण देश में फैले हैं, वे स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग करते हैं, अनेक उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जो परिवार की जरूरतें पूरी करते हैं और व्यक्ति का आयाम बड़ा करते हैं। हस्तशिल्प का इतिहास उतना ही पुराना है जितना भारत का है। अंग्रेजों ने भारत में मशीन निर्मित सामान बेचना आरंभ किया। इसलिये अंग्रेजों के शासनकाल में हस्तशिल्प की भारी क्षति हुई। अंग्रेजों ने हस्तशिल्प क्षेत्र को हतोत्साहित किया। परिणामतः शिल्पकार भयानक गरीबी और भुखमरी के शिकार होते गये। भारतीय अर्थव्यवस्था फूलते–फलते ब्रिटिश उद्योगों के लिये कच्चे पदार्थों का स्रोत और उत्पादित सामानों के लिये बाजार बन गई। तत्कालीन कई शिल्प ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीति के फलस्वरूप किंवदन्ती बनकर रह गए हैं। भारतीय शिल्प और विकेन्द्रित उद्योगों का पराभव होता गया।

हस्तशिल्प एक प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। यह विशिष्टता प्राप्त क्षेत्र है। उत्पादन, रोजगार एवं निर्यात व्यापार की दृष्टि से हस्तशिल्प एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। हस्तशिल्प क्षेत्र में हाल के वर्षों में उत्पादन लगातार बढ़ा है। हाल के वर्षों में इस क्षेत्र की प्रगति उल्लेखनीय रही है। हस्तशिल्प क्षेत्र में 1997–98 में लगभग 10,411 करोड़ रुपये का सामान बना था जो क्रमशः बढ़कर 2006–07 में 47,000 करोड़ रुपये का हो गया। इन उत्पादों के प्रति सामाजिक अभिरुचि भी बढ़ रही है। हस्तशिल्प एक निर्यातपरक उत्पादक क्षेत्र है। हस्तशिल्प क्षेत्र से 1997–98 में 6458 करोड़ रुपये का सामान निर्यात किया गया था। इस क्षेत्र से कुल निर्यात क्रमशः बढ़कर 2006–07 में लगभग 17,000 करोड़ रुपये का हो गया। यू.एस.ए. भारत के हस्तशिल्प उत्पादों का सबसे बड़ा ग्राहक है। इसके अतिरिक्त यू.के, फ्रांस, कनाडा, इटली, जापान, नीदरलैण्ड, स्विटजरलैण्ड एवं आस्ट्रेलिया हस्तशिल्प उत्पादों के प्रमुख खरीददार हैं। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में हस्तशिल्प क्षेत्र से निर्यात बढ़ाने के अधिक बड़े लक्ष्य रखे गए हैं। हाल के वर्षों में हस्तशिल्प क्षेत्र से लगभग 7 मिलियन लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त होता है। इसके लिए विविध प्रकार का कच्चा माल स्थानीय रूप से सुलभ हो जाता है। कच्चे माल का आयात नहीं करना पड़ता। इसका उत्पादन धारणीय है और पर्यावरण पोषक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हस्तशिल्प के विकास हेतु विभिन्न प्रयास किए गए। भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में हस्तशिल्प बोर्ड स्थापित किया। इसके अतिरिक्त उसी समय सिल्क बोर्ड, नारियल जटा बोर्ड, ग्रामोद्योग बोर्ड, हथकरघा बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड भी स्थापित किए गए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में 1957 में 'खादी और ग्रामोद्योग आयोग' स्थापित किया गया। यह कुम्हारी, बढ़ईगीरी, चर्म सामग्री आदि से सम्बन्धित कार्यों को भी बढ़ावा देता है जो हस्तशिल्प की अत्यन्त प्रमुख वस्तएं हैं। हस्तशिल्प विकास के लिये सरकार की ओर से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम हस्तशिल्प की गुणवत्ता, उन्नयन और रोजगार उपलब्ध कराने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक अनुमान के अनुसार कि प्रशिक्षित शिल्पकारों में 70 से 80 प्रतिशत तक लोगों को लाभकारी रोजगार प्राप्त हो जाता है। हस्तशिल्प के विकास के लिये प्रविधि उन्नयन, बाजार प्रोत्साहन, प्रदर्शनी एवं मेले, निर्यात संवर्धन के कार्यक्रम चलाये जाते हैं। देश में 196 विभागीय आधारित प्रशिक्षण केन्द्रों पर गलीचा, बेंत, बांस धातु आदि से हस्तशिल्प बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। 'नगरीय हाट' की योजना हस्तशिल्प उत्पादों की बिक्री प्रोत्साहन के लिये उपयोगी है। आगरा, अहमदाबाद, भुवनेश्वर, दिल्ली, रांची, करनाल, तिरुपति, कलकत्ता आदि स्थानों पर नगरीय हाट बनाये गये हैं। वर्ष 2001–02 में 'अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना' आरंभ की गयी है। अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना के माध्यम से शिल्पकारों को अपनी विधा में सक्रिय उद्यमी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। योजना में इस बात पर भी जोर दिया

जा रहा है कि वैयक्तिक शिल्पकारों में सामुदायिक दृष्टिकोण बढ़े। स्वयंसहायता समूहों, सहकारी समितियों और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से शिल्पकारों को प्रोत्साहित करने का प्रावधान है। इनके माध्यम से शिल्पकारों को वित्तीय सहायता का भी प्रावधान है।

हस्तशिल्प उत्पाद जीवन की अनिवार्यताओं से एक ओर सम्बद्ध होते हैं और दूसरी ओर वे व्यक्ति के हृदय को संतोष और चित्त को प्रसन्न करने की सामर्थ्य रखते हैं। औद्योगिक उत्पादों में इतनी विविधता नहीं होती है। जबकि हस्तशिल्प उत्पादों की विशेषता उसकी विविधता है। यह निर्यातपरक क्षेत्र है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात बढ़ाने के समय–समय पर प्रयास किए गए। हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात में निजी क्षेत्र के व्यापारी प्रमुख भूमिका रखते हैं। सहकारी समितियों और राज्य हस्तशिल्प विकास निगम भी निर्यात वृद्धि का प्रयास करते हैं। सहकारी समितियों और राज्य हस्तशिल्प विकास निगम भी निर्यात वृद्धि का प्रयास करते हैं। विकास आयुक्त (हस्तशिल्प) और हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात में महत्वपूर्ण भूमिका है। वे अंतर्राष्ट्रीय मेलों में शिल्प उत्पादों को प्रोत्साहित करते हैं। क्रेता–विक्रेता का सम्पर्क स्थापित कराते हैं और प्राविधिक तथा अध्ययन दल दूसरे देशों को भेजने में सहायता करते हैं।

नेशनल काउन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (एन.सी.ए.इ.आर.) ने हस्तशिल्प विकास आयुक्त की ओर से 1993 में आधारिक रूप से हस्तशिल्प गणना का कार्य किया और जून 1993 में हस्तशिल्प गणना की रिपोर्ट प्रस्तुत की। इससे हस्तशिल्प उद्यम की एक महत्वपूर्ण सेवा सम्पन्न हुई और इसकी आधारिक संरचना स्पष्ट हुई।

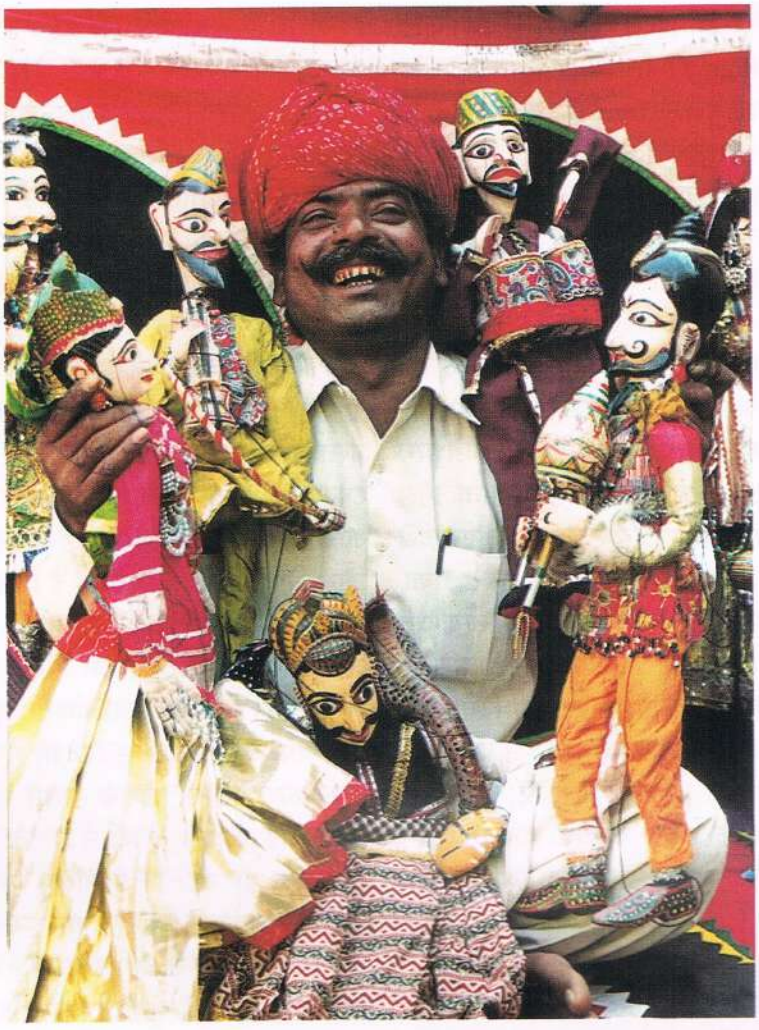

हस्तशिल्प गणना 1993 के अनुसार देश में 47.6 लाख शिल्पकार हैं। इसी प्रकार देश में 14.5 लाख हस्तशिल्प इकाइयां कार्यरत हैं। गणना के अनुसार हस्तशिल्प की अधिकांश इकाइयां असंगठित क्षेत्र में हैं। यह अनुमान किया गया है कि लगभग 96.27 प्रतिशत शिल्पकार और 97.96 प्रतिशत हस्तशिल्प इकाइयां असंगठित क्षेत्र में हैं। अर्थात् अधिकांश शिल्पकार अपने ही घरों में परिवार के श्रम द्वारा अपना व्यवसाय चलाते हैं। कुल मिलाकर यह परिवार केन्द्रित व्यवसाय है। केवल 3.2 प्रतिशत पारिवारिक इकाइयां किराये के श्रम से अपना व्यवसाय चलाती हैं। गैर–परिवार क्षेत्र में निगमीय आधार पर कार्य करने वाली हस्तशिल्प इकाइयां मात्र 2.04 प्रतिशत हैं और इनमें कार्यरत् शिल्पकार 3.73 प्रतिशत हैं।

हस्तशिल्प मूलतः ग्रामीण क्षेत्र की क्रिया रही है। क्रमशः इसका प्रसार कस्बों और नगरों की ओर हुआ। ग्रामीण क्षेत्र के संसाधन और परिवेश हस्तशिल्प के पोषक रहे। हस्तशिल्प गणना, 1993 के अनुमान के अनुसार देश की हस्तशिल्प की कुल इकाइयों का लगभग 78 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में है। इसी प्रकार कुल शिल्पकारों में 76 प्रतिशत शिल्पकार ग्रामीण क्षेत्र में हैं। वस्तुतः बाजार की उपलब्धता के परिप्रेक्ष्य में कच्चे माल के उद्गम स्थानों से दूर भी

तालिका–1 हस्तशिल्प इकाइयां एवं शिल्पकार (प्रतिशत)

क्षेत्र	इकाइयां	शिल्पकार
ग्रामीण क्षेत्र	78.2	76.5
नगरीय क्षेत्र	21.8	23.5
सम्पूर्ण भारत	100.00	100.00
हस्तशिल्प इकाइयों की कुल संख्या	**1455056**	**4761186**

हस्तशिल्प की इकाइयां कार्यरत हैं। तालिका– 1 में हस्तशिल्प इकाइयों का क्षेत्रवार विवरण प्रस्तुत किया गया है।

हस्तशिल्प में बहुविध क्रियाएं सम्मिलित हैं। इसीलिए इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथापि वस्त्र के क्षेत्र में देश की हस्तशिल्प विधा अग्रणी है। स्थान–स्थान पर वस्त्रों पर विविध प्रकार की कढ़ाई की जाती है। कपास, ऊन, मेस्टा, सिल्क, जूट आदि के धागे मुख्यतः हस्तशिल्प क्षेत्र में ही बनते हैं। बुनाई का कार्य भी हस्तशिल्प क्षेत्र में प्रमुखता के साथ किया जाता है। देश के 58 प्रतिशत शिल्पकार वस्त्र एवं परिधान तथा गलीचा और दरी की बुनाई, रंगाई, गढ़ाई, धाग बनाना आदि से अपनी आजीविका कमाते हैं। शिल्पकार परिवारों की महिलाएं बहुधा परिवार के शिल्प कार्य में हाथ बंटाती हैं। हाथ के काम वाली साड़ियां अन्य मिल निर्मित साड़ियों पर वरीयता प्राप्त होती हैं। वस्त्र, गलीचा एवं दरी के अतिरिक्त बेंत एवं बांस, लकड़ी धातु, पत्थर, भूसा, घास, रेशा, पत्ती, चमड़ा, कांच, मिट्टी, हाथीदांत, सींग आदि से सम्बन्धित हस्तशिल्प अत्यन्त प्रमुख हैं। तालिका–2 में प्रमुख हस्तशिल्प, इनकी इकाइयां और उनमें लगे शिल्पकारों का विवरण दिया गया है। इससे भी यह स्पष्ट है कि वस्त्र, गलीचा एवं दरी से सम्बन्धित हस्तशिल्प की देश में प्रधानता है। तालिका में दिए गए प्रमुख हस्तशिल्पों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के क्षेत्र विशिष्ट शिल्प भारत में हैं। शिल्प का संसार भारत में अत्यन्त व्यापक एवं विविधता से है।

तालिका–2 हस्तशिल्प इकाइयां एवं शिल्पकारों का वितरण (प्रतिशत)

प्रमुख हस्तशिल्प	इकाइयां	शिल्पकार
वस्त्र, गलीचा एवं दरी	56.7	58.4
बेंत एवं बांस	12.6	12.5
लकड़ी	6.2	5.5
धातु	3.6	3.7
पत्थर	0.4	0.7
भूसा, घास, रेशा एवं पत्ती	7.4	6.4
चमड़ा	2.8	2.8
कांच	0.8	1.0
मिट्टी	5.2	5.5
हाथीदांत, हड्डी, सींग एवं शंख	0.6	0.6
विविध	3.3	2.8
हस्तशिल्प के समस्त स्वरूप	100.0	100.0
हस्तशिल्प ईकाइयों की कुल संख्या	**1455056**	**4761186**

भारत में हस्तशिल्प से बहुत बड़ी संख्या में शिल्पकार अपनी आजीविका कमाते हैं। देश का प्रत्येक शिल्पकार विशिष्ट है। प्रत्येक शिल्पकार एक डिजाइनर भी है, जबकि प्रत्येक डिजाइनर आवश्यक रूप से शिल्पकार नहीं है। हस्तशिल्प की क्रिया श्रम प्रधान है। रोजगार बढ़ाने वाली है। इसकी क्रियाविधि सर्वथा गैर–प्रदूषणकारी है। इसमें मूल्य बढ़ाव की सामर्थ्य है। इनकी मांग आवर्ती प्रकृति की होती है। इसीलिए इन उत्पादों की मांग में कमी की समस्या नहीं रहती है। इन उत्पादों की मांग घरेलू और वैदेशिक क्षेत्र में समान रूप से उपलब्ध है। शिल्पकार समाज के लिए उपयोगी और श्रेष्ठ वस्तु का उत्पादन करता है। हस्तशिल्प के उत्पाद कुछ लोगों के लिए दैनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुएं हैं, कुछ लोगों के लिए उनकी जीवन पद्धति और जीवन दर्शन का अंग है। हस्तशिल्प के उत्पाद पर्यटकों के लिये श्रेष्ठ सजावटी उत्पाद हैं। व्यापारियों के लिए अत्यन्त कम कीमत पर मिलने वाले लाभकारी उत्पाद हैं। हस्तशिल्प गहन क्षेत्र स्वयं में पर्यटकों का गंतव्य स्थल है। परन्तु जो शिल्प समाज की जरूरी आवश्यकता पूरी करता है, जो बहुतों के व्यवसाय का आधार है, विदेशी मुद्रा का आधार है, उससे जुड़े शिल्पकार अत्यन्त खराब हालत में हैं। लगभग सभी आधारिक शिल्पकार अत्यन्त गरीबी में हैं। वे अपनी मूलभूत जरूरतें भी पूरी नहीं कर पा रहे हैं। इसीलिए कई शिल्पकार अपना व्यवसाय बन्द करने को विवश हैं। कई हस्तशिल्प विलुप्त हो गए हैं और कई विलुप्त होने के कगार पर हैं। अतः शिल्पकारों के परम्परागत कार्य और ज्ञान को सुरक्षित रखने, उसे लाभकारी और सम्मानजनक व्यवसाय बनाने के लिए तथा शिल्पकारों को संरक्षण और प्रोत्साहन देने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

हस्तशिल्प उत्पादों का एक ओर प्रयोग मूल्य है और दूसरी ओर सांस्कृतिक मूल्य है। इसलिए हस्तशिल्प उत्पादों की व्यावसायिक संभावना अत्यन्त ऊंची है। नयी आर्थिक नीति आरम्भ होने के साथ–साथ जहां उदारीकरण एवं वैश्वीकरण पर जोर दिया गया वहीं विश्व व्यापार संगठन के बाजार उपलब्धता प्रावधान के अन्तर्गत बाजार खोले गए। आयातों से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिए गए। आयातों का नियंत्रण मात्र प्रशुल्क आधारित हो गया तथा प्रशुल्कों में भी लगातार कमी की गई। इस कारण हस्तशिल्प का घरेलू बाजार भी खुल गया है। दूसरे देश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मशीन निर्मित हस्तशिल्प जैसा लगने वाला अपना उत्पादन भारत में ला रही हैं। इसलिए हस्तशिल्प उत्पादक जो स्वयं के श्रम और बहुत कम किराये के श्रम से अपना व्यवसाय चलाते हैं, वे मशीन निर्मित विदेशी हस्तशिल्प के समान दिखने वाले हस्तशिल्प उत्पादों से प्रतियोगिता नहीं कर पा रहे हैं। खिलौने का बाजार प्रमुखता से हस्तशिल्प आधारित है जबकि यह चीन के उत्पादों से मरता जा

रहा है। हस्तशिल्प व्यवसायियों को घरेलू बाजार में और विदेशी बाजार में गम्भीर प्रतियोगिता करनी पड़ रही है।

हस्तशिल्प श्रम प्रधान उद्यम रहा है और यही इसकी सुन्दरता और विशिष्टता रही है। परन्तु देश में स्थित बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और अन्य देशों की सरकारें इसे पूंजी प्रधान बनाकर हस्तशिल्प के स्वरूप को विकृत कर रहे हैं। इन कम्पनियों एवं आयातित उत्पादों में हस्तशिल्प की मौलिक विशेषता है ही नहीं। प्रति इकाई कीमत कम होने के कारण मशीन निर्मित उत्पादों की बिक्री अधिक हो जाती है और हस्तशिल्प पिछड़ रहे हैं। यह भदोही और कश्मीर के कालीन, फिरोजाबाद की चूड़ियां, खिलौने आदि के संदर्भ में स्पष्ट देखा जा सकता है। चीन के कई मशीन से बनने वाले परन्तु हस्तशिल्प जैसे प्रतीत होने वाले उत्पादों से भारतीय बाजार पटता जा रहा है। उदाहरण के लिए भारत का खिलौने का बाजार लगभग 2500 करोड़ रुपये का है। इसका लगभग 70 प्रतिशत बाजार चीन के मशीन निर्मित हानिकारक उत्पादों के हाथ पहुंच गया है। इसी प्रकार रेशम उत्पादकों को भारी क्षति हो रही है। रेशम और रेशम उत्पादों के आयात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटने से रेशम उत्पादकों और हथकरघों को मिल उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। चिकन वाले वस्त्रों से सामना करना पड़ रहा है। वैश्विक मंदी के कारण यू.एस.ए. और यूरोप में हस्तशिल्प उत्पादों की मांग कम हो गई है। हस्तशिल्प क्षेत्र की प्रोत्साहन क्रियाएं मुख्यतः हस्तशिल्प उत्पादों के सजावटी पक्ष और पर्यटन प्रोत्साहन पर केन्द्रित हैं। यदि हस्तशिल्प के गरीबी निवारण पर ध्यान दिया जाए तो बाजार में इस अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य का विरोधाभास स्पष्ट होता है।

हस्तशिल्प में वैयक्तिक दक्षता का तत्व तो है ही साथ–साथ इसमें परम्परागत ज्ञान का भी तत्व है जिसे बहुधा नजरअंदाज कर दिया जाता है। बौद्धिक सम्पदा को संरक्षित करने और बौद्धिक सम्पदा को अधिकार प्रदान करने का विश्वव्यापार संगठन में विधिक समझौता किया गया है। परन्तु कई क्षेत्रों के परम्परागत ज्ञान को भी सुरक्षित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु अब तक शिल्प को संरक्षण प्रदान करने, उसके परम्परागत स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रयासों की कमी है। हस्तशिल्प सहित अन्य सभी प्रकार के शिल्प को बहुधा लोक साहित्य में सम्मिलित किया जाता है। 'विश्व बौद्धिक संपदा संगठन' के अनुसार लोक साहित्य में हस्तशिल्प और अन्य सभी मूर्त साहित्यिक अभिव्यक्ति सम्मिलित हैं। 'विश्व बौद्धिक संपदा संगठन' के अनुसार मूर्त साहित्यिक अभिव्यक्तियों से आशय चित्रकारी, रेखाचित्र, नक्काशी, प्रतिमा बनाना, लकड़ी का काम, धातुकर्म, आभूषण बनाना, टोकरी बनाना, वस्त्र एवं परिधान, संगीत उपकरण, इमारत निर्माण के विविध रूप सम्मिलित हैं। परन्तु इनमें भी अनिवार्यता का पक्ष नहीं है। विश्व व्यापार संगठन जनवरी 1995 से प्रभावी हुआ और कई नवीन क्षेत्र इसकी श्रेणी में आ गए। विश्व व्यापार संगठन के व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा प्रावधान के अनुसार बौद्धिक संपदा के संरक्षण हेतु बाध्यकारी विधिक प्रावधान किए गए। बौद्धिक सम्पदा में कापीराइट, ट्रेडमार्क, पेटेंट, इन्डस्ट्रियल डिजाइन ट्रेड सीक्रिट, इन्टीग्रेटेड सरकिट डिजाइन और भौगोलिक सूचक सम्मिलित किए गए। बौद्धिक संपदा अधिकार के भौगोलिक सूचकों को शिल्प के क्षेत्र में लागू करने के लिये विचार–विमर्श किया गया। हस्तशिल्प के क्षेत्र में ट्रिप्स के प्रावधान भौगोलिक सूचक, कापीराइट, इन्डस्ट्रियल डिजाइन पर हुए समझौतों के अनुसार लागू होते हैं।

भौगोलिक सूचकों पर हुआ समझौता हस्तशिल्प के संरक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कभी–कभी किसी उत्पाद की पहचान के लिए 'स्थान' का नाम प्रयोग किया जाता है। भौगोलिक सूचक उत्पाद का स्थान बताने के साथ–साथ उत्पादन के विशेष गुणों को भी व्यक्त करता है। शैम्पेन, स्कोच, टेम्विला और राकफोर्ट आदि स्थान सूचकों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। शराब और स्प्रिट के उत्पादों की पहचान के लिए विशेष रूप से 'स्थान' नामों का प्रयोग किया जाता है। कई अन्य उत्पादों के लिए भी यह प्रावधान संगत है। ट्रिप्स प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि 'स्थान' आधारित नाम वाले उत्पादों के भौगोलिक सूचकों का दुरुपयोग न किया जा सके।

भारत सरकार द्वारा 1999 में जियोग्राफिकल इंडीकेशन एक्ट पारित किया गया। कई राज्य सरकारें भी इस दिशा में पहले से कार्यरत हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य इसके अंतर्गत आने वाले उत्पादों को संरक्षण प्रदान करना और भौगोलिक सूचकों की अनुचित प्रयोग से रक्षा करना है। भौगोलिक सूचक एक व्यापारिक अधिकार है। इसका प्रयोग शिल्प और कला के मूल्य को बढ़ाने के लिये किया जा सकता है। यह कानून उत्पादित वस्तु की कला और शिल्प के ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का संरक्षण नहीं करता अपितु यह उत्पादन 'स्थान' के नाम के दुरुपयोग से बचाव करता है। भारत में अनेक हस्तशिल्प उत्पाद विशिष्ट स्थानों से जुड़े हैं और वहीं से ख्याति अर्जित किए हैं। यथा चन्देरी की साड़ियां, भदोही का कालीन, कश्मीरी शाल, सहारनपुर की लकड़ी पर नक्काशी आदि। इन उत्पादों की यदि व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाए तो इनका घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बड़ा बन सकता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हस्तशिल्प के नाम पर विदेशों से एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मशीन निर्मित उत्पादों को बाजार में प्रवेश करने से रोका जाए। सस्ती कीमत पर आने वाले उत्पादों पर एन्टी डम्पिंग शुल्क लगाया जाए।

(लेखक इलाहाबाद डिग्री कालेज में अर्थशास्त्र विभाग के रीडर हैं।)

खेतीबाड़ी

मूंगफली की वैज्ञानिक खेती मुनाफे का सौदा

डॉ. बी. गगंय्या

विश्व के कुल मूंगफली उत्पादन का 25 प्रतिशत भारत में पैदा होता है। मूंगफली खाद्य तेल का एक अच्छा स्रोत है। मूंगफली के दानों में 45-50 प्रतिशत तेल होता है जिसका प्रयोग वनस्पति घी बनाने में किया जाता है। इसके दानों में लगभग 25.1 प्रतिशत प्रोटीन तथा 10.2 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पायी जाती है। मूंगफली के दानों में पायी जाने वाली प्रोटीन की पाचन योग्यता बहुत अधिक होती है। अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा मूंगफली में ऊर्जा भी बहुत अधिक होती है। भारत में मूंगफली की औसत पैदावार 1005 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। मूंगफली की उत्पादकता दिनोंदिन घटती जा रही है जिसका प्रमुख कारण किसानों द्वारा इस फसल में उन्नत कृषि क्रियाएं न अपनाना विशेषकर उर्वरकों का असंतुलित तथा कम मात्रा में प्रयोग करना है। प्रस्तुत लेख में दी गई उन्नत सस्य प्रौद्योगिकियों को अपनाकर किसान भाई मूंगफली की पैदावार में डेढ़ से दो गुना बढ़ोतरी कर सकते हैं।

हमारे देश में उगायी जाने वाली तिलहनी फसलों में मूंगफली का विशेष स्थान है। तिलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से मूंगफली का प्रथम स्थान है। भारत में 8.40 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में मूंगफली की खेती की जाती है। जबकि देश में मूंगफली का कुल उत्पादन 8.90 मिलियन टन है। विश्व के कुल मूंगफली उत्पादन का 25 प्रतिशत भारत में पैदा होता है। हमारे देश में मूंगफली की खेती प्रमुख रूप से गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र में की जाती है। मूंगफली खाद्य तेल का एक अच्छा स्रोत है। मूंगफली के दानों में 45–50

प्रतिशत तेल होता है जिसका प्रयोग वनस्पति घी बनाने में किया जाता है। इसके दानों में लगभग 25.1 प्रतिशत प्रोटीन तथा 10.2 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पायी जाती है। मूंगफली के दानों में पायी जाने वाली प्रोटीन की पाचन योग्यता बहुत अधिक होती है। अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा मूंगफली में ऊर्जा भी बहुत अधिक होती है। मूंगफली के तेल का प्रयोग कोल्ड क्रीम, साबुन, शेविंग क्रीम व कई तरह के सौंदर्य प्रसाधनों के बनाने में भी किया जाता है। मूंगफली में विटामिनों और खनिज लवणों की भी प्रचुर मात्रा होती है। खनिज लवणों में फास्फोरस, कैल्शियम व लोहा अधिक मात्रा में पाया जाता है। तेल निकालने के बाद बची हुई खली पशुओं के स्वादिष्ट व पौष्टिक आहार के रूप में भी प्रयोग की जाती है। मूंगफली के दानों को अलग करने के पश्चात हरे पौधों को चारे के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा मूंगफली के फलीदार फसल होने के कारण वातावरण की नाइट्रोजन को भूमि में स्थिरीकरण कर जमीन को दोबारा उपजाऊ बनाने में भी मदद करती है। भारत में मूंगफली की औसत पैदावार 1005 कि.ग्रा./हे. है। मूंगफली की उत्पादकता दिनोंदिन घटती जा रही है जिसका प्रमुख कारण किसानों द्वारा इस फसल में उन्नत कृषि–क्रियाएं न अपनाना विशेषकर उर्वरकों का असंतुलित तथा कम मात्रा में प्रयोग करना है। प्रस्तुत लेख में दी गई उन्नत सस्य प्रौद्योगिकियों को अपनाकर किसान भाई मूंगफली की पैदावार में डेढ़ से दो गुना बढ़ोतरी कर सकते हैं।

जलवायु

उष्ण कटिबन्धीय पौधा होने कारण मूंगफली की खेती 50–125 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। इसे समुद्र तल से 1065 मीटर की ऊंचाई तक उगाया जा सकता है। इसकी वानस्पतिक वृद्धि व फली बनने के समय 27–30° सें. तापमान उपयुक्त रहता है। पकने के समय गर्म और शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है।

भूमि का चयन और तैयारी

मूंगफली की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। मृदा में कैल्शियम और जीवांश पदार्थ पर्याप्त में मात्रा होना चाहिए। साथ ही जल निकास की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। खेत पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 3–4 जुताईयां कल्टीवेटर से करके मिट्टी को चूर्णित व भुरभुरी बना लेना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं ताकि मृदा में नमी संचित बनी रहे।

उन्नतशील प्रजातियां

आजकल मूंगफली की अनेक उन्नतशील प्रजातियां किसानों के लिए उपलब्ध हैं। स्थानीय व परम्परागत किस्मों की तुलना में इनकी पैदावार 15–20 प्रतिशत अधिक है। अतः किसानों को नवीनतम व उन्नतशील प्रजातियों को ही बोना चाहिए। साथ ही इन प्रजातियों में रोगों और कीटों का भी कम प्रकोप होता है। मूंगफली की स्थान विशेष के अनुसार सुझायी प्रजातियों का विवरण निम्न प्रकार है:

गुजरात – सोमनाथ आई.सी.सी.एस. 37, टी.जी. 22, टी.जी. 26, टी.जी. 3, जी.जी. 6, गिरनार 1, जे. 11, जी. ए.यू.जी. 1, आई.सी.जी.एस. 44, वी.आर.आई. 2, जी.जी. 12 इत्यादि।

आंध्र प्रदेश – कादरी 3, जे.एल. 24, गिरनार 1, तिरूपति 4, के. 134, जे.सी.सी. 88, आई.सी.जी.एस. 11, आई.सी.जी.एस. 44, आई.सी.जी.एस. 76, वी. आर.आई.4,इत्यादि।

कर्नाटक – आई.सी.जी.एस. 11, के.आर.जी. 1, टी.एम. वी. 2, कौशल, आई.सी.जी.एस. 44, टी.जी. 17, टी. जी. 26, एम. 206 इत्यादि।

तमिलनाडु – आई.सी.जी.एस. 44, जे.एल. 24, टी.एम.बी. 2, वी.आर.आई. 1, वी.आर.आई. 2, वी.आर.आई. 3, वी.आर.आई. 4, वी.आर.आई. 5, डी.एम.आर. 1 इत्यादि।

पूर्ण वृद्धि अवस्था पर मूंगफली की लहलहाती फसल

लाल छिलके वाली मूंगफली के दाने व फलियां

महाराष्ट्र – कादरी 4, प्रगति, गौरव, जे.एल. 24, आई.सी.जी. एस. 37, करद 4–11, गिरनार 1, आई.सी.जी. एस. 11, जवाहर, गंगापुरी, ज्योति, टी.जी. 198 आदि।

राजस्थान – चित्रा, आर.एस.बी. 87, एम. 13, आर.एस. 1, ए.के. 12–24, जे.एल. 24, जी.जी. 2, आई.सी.जी. एस. 1, आर.जी. 141, आर.जी. 141, आर.जी. 144, मुक्ता प्रकाश, एच.एन.जी. 10, वी.ए.यू. 13 आदि।

मध्य प्रदेश – जवाहर, गंगापुरी, ज्योति, आई.सी.जी.एस. 11, कौशल, एच.एन.पी. 10, टी.जी. 24 आदि।

उत्तरी राज्य – एस.जी. 44, एस.जी. 84, पंजाब मूंगफली न. 1, आई.सी.जी.एस. 37, आई.सी.जी.एस. 76, मुक्ता, चित्रा, प्रकाश, एच.एन.जी. 10, एम.एस. 4, टी. जी. 22, एम. 335, डी.आर.जी.जी. 17, आई.सी. जी.एस. 9, वी.ए.यू. 13 आदि।

बुवाई का समय

खरीफ मौसम की फसल की बुवाई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। बुवाई करने से पूर्व पलेवा अवश्य करें जिससे बीजों का अंकुरण जल्दी व एक समान रूप से होता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा प्रारम्भ होने पर जब मृदा में पर्याप्त नमी हो, तब मूंगफली की बुवाई कर देनी चाहिए। उत्तरी भारत में बुवाई जुलाई के प्रथम पखवाड़े में अवश्य कर लेनी चाहिए। देर से बुवाई करने पर मूंगफली की पैदावार में अत्यधिक कमी आ जाती है। महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु व अन्य दक्षिणी राज्यों में मूंगफली की बुवाई नवम्बर से जनवरी तक रबी मौसम में की जाती है।

बीज की मात्रा

मूंगफली की फसल से अधिक पैदावार लेने हेतु गुच्छेदार किस्मों का 100 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। जबकि फैलने वाली किस्मों का 80 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बीज शुद्ध, स्वच्छ व साफ–सुथरा होना चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

बीजोपचार

विभिन्न बीमारियों से बचाव हेतु बीजोपचार अति आवश्यक है। इसके लिए बुवाई से पूर्व बीज को 2.5 ग्राम थीरम या बाविस्टीन से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। यदि किसान भाइयों ने बीज किसी विश्वसनीय संस्था से खरीदा है तो उसे उपचारित करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह बीज पहले से ही उपचारित होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि मूंगफली एक दलहनी कुल की फसल है। यह वातावरण की नाइट्रोजन (78%) का यौगिकीकरण कर भूमि स्थापित करने की क्षमता रखती है। इसलिए इस क्षमता को बढ़ाने के लिए बुवाई के 10–12 घंटे पहले राइजोबियम नामक जीवाणु उर्वरक से उपचारित कर लेना चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र में बुवाई करने हेतु राइजोबियम जीवाणु के दो पैकेट पर्याप्त होते हैं। ये पैकेट प्रायः सभी कृषि अनुसंधान व कृषि विश्वविद्यालयों में मुफ्त उपलब्ध हैं। राइजोबियम उपचार हेतु एक टिन के चौड़े बर्तन में एक लीटर पानी में 125 ग्राम गुड़ तथा दो ग्राम गोंद को अच्छी तरह उबाल लें। उसके बाद ठंडा होने पर इस घोल में राइजोबियम के दोनों पैकेट अच्छी तरह मिला दें। इस प्रकार बनी लई को बीज के अच्छी तरह मिला दें। जिससे बीच के चारों ओर लई की महीन परत चढ़ जाये। उसके बाद बीज को छाया में सुखा लें। ध्यान रहे कि उपचारित बीज को कभी भी धूप में न सुखाएं। इससे मूंगफली की पैदावार में 15–20 प्रतिशत की बढ़ोतरी की जा सकती है। बीज को सर्वप्रथम कवकनाशी फिर कीटनाशी और सबसे बाद में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें।

बुवाई की विधि

मूंगफली की बुवाई पंक्तियों में हल के पीछे कूड़ों में या सीडड्रिल की सहायता से करनी चाहिए। बीज को छिटककर बोने से सबसे अधिक हानि होती है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखें। जबकि फैलने वाली किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. और पौधे से पौधे दूरी 15 से.मी. रखें। प्रति इकाई क्षेत्र वांछित पौध संख्या बनाये रखने व अधिक क्षेत्र में बुवाई के लिए सीडड्रिल का प्रयोग करें। बीज की बुवाई 4–6 से.मी. की गहराई पर अंकुरण शीघ्र व अच्छा होता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

मिट्टी परीक्षण के आधार पर की गयी सिफारिशों के अनुसार ही खाद एवं उर्वरकों की मात्रा सुनिश्चित की जानी चाहिए। मूंगफली की अच्छी फसल के लिए 8–10 टन अच्छी तरह सड़ी–गली गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों के लिए 20–25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–55 कि.ग्रा. फास्फोरस व 30–35 कि.ग्रा. पोटाश/है. की दर से प्रयोग करना चाहिए। साधारणतः उत्तरी भारत की मृदाओं में जिंक व सल्फर की कमी पायी जाती है। अतः इन पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए 15–20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट व 200–400 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से जिप्सम का प्रयोग बुवाई के समय करें। जिप्सम को पुष्पावस्था के समय पौधों के चारों ओर छिंटक कर भी डाला जा सकता है। मृदा में सल्फर की कमी का मूंगफली में तेल की मात्रा और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जबकि कैल्शियम की. कमी से मूंगफली में दानों का भराव ठीक से नहीं हो पाता है। अतः मूँगफली की फसल में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश को क्रमशः अमोनियम सल्फेट, सुपर फास्फेट व पौटेशियम सल्फेट के रूप में देना लाभकारी पाया गया है। बरानी या असिंचित क्षेत्रों में 15–20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30–40 कि.ग्रा. फास्फोरस व 20–25 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

साधारणतया खरीफ मूंगफली की फसल वर्षा पर निर्भर करती है। अतः सिंचाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। मूंगफली की फसल में चार वृद्धि अवस्थाएं क्रमशः प्रारम्भिक वानस्पतिक वृद्धि अवस्था, फूल बनना, अधिकीलन (पेगिंग) व फली बनने की अवस्था सिंचाई के प्रति अति संवेदनशील है। मूंगफली में दूध बनने की अवस्था पर पानी की कमी का फसल की वृद्धि और पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खेत में आवश्यकता से अधिक भरे पानी को भी तुरन्त बाहर निकाल देना चाहिए। अन्यथा वृद्धि व उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

सहफसली खेती

मूंगफली के साथ अन्तः फसलीकरण से किसान भाई 20 से 30 प्रतिशत अधिक उपज ले सकते हैं। भारत के अधिकाश मूंगफली उत्पादक राज्यों में मूंगफली के साथ अरहर, कपास, मक्का, ज्वार, बाजरा, तिल इत्यादि महत्वपूर्ण अन्तःसस्य प्रणाली है। इन फसलों के साथ मूंगफली को पंक्तियों में 4:1 या 3:1 के अनुपात में उगाया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में सूखे के कारण मूंगफली की फसल के असफल होने के जोखिम को भी टालने के लिए सहफसली खेती की जाती है। इस पद्धति में भूमि संसाधनों का उचित उपयोग होता है क्योंकि दोनों फसलों की बढ़ोतरी का तरीका अलग–अलग होता है। इस विधि से अनियमित व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल के नष्ट होने की जोखिम की प्रतिपूर्ति तो होती ही है। इसके अलावा एकल फसल की तुलना में सहफसली खेती से कुल उत्पादन में भी बढ़ोतरी होती है। साथ ही इसमें संसाधनों का बेहतर ढंग से उपयोग होता है। सहफसली खेती में उत्पादकता बढ़ने के साथ–साथ खरपतवारों, कीटों व बीमारियों का भी प्रकोप होता है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ती है बल्कि सौर ऊर्जा, नमी व पोषक तत्वों का भी कुशलतापूर्वक उपयोग होता है। अतः सिंचित व असिंचित दोनों क्षेत्रों में मूंगफली के साथ सहफसली खेती करना मुनाफे का सौदा है।

खरपतवार नियंत्रण

मूंगफली की अच्छी पैदावार लेने के लिए कम से कम दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें। पहली और दूसरी निराई क्रमशः बुवाई के 20–25 दिन तथा 40–45 दिन बाद करनी चाहिए। इससे जड़ों की अच्छी बढ़वार व फैलाव होता है। साथ ही भूमि में वायु संचार भी बढ़ता है। आजकल मजदूरों की कम उपलब्धता और उनकी अधिक मजदूरी के कारण बहुत से शाकनाशी बाजार में उपलब्ध हैं। रासायनिक विधि से खरपतवारों को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। इसके लिए फसल की बुवाई के पूर्व फ्लूक्लोरेलिन 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति है. दर से 600 लीटर पानी में छिड़काव करके भी खरपतवारों को नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके अलावा पेन्ड़ीमिथेलीन शाकनाशी की 1.0 कि.ग्रा. मात्रा को

खुदाई उपरांत पौधों से मूंगफली अलग करते किसान

500–600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पहले छिड़कना चाहिए। इससे अधिकतर खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार एलाक्लोर की 1.0–1.5 कि.ग्रा./हे. की दर से छिड़काव करके भी खरपतवारों का नियन्त्रण किया जाता है।

कीटों की रोकथाम

मूंगफली की फसल में अनेक प्रकार के कीटों द्वारा नुकसान होता है। जिनमें सफेद लट, विहार की रोमिल इल्ली, मूंगफली का एफिड़ व दीमक प्रमुख हैं। सफेद लट की समस्या वाले क्षेत्रों में बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरान 25 कि.ग्रा./हे. की दर से खेत में डालें। दीमक के प्रकोप को कम करने के लिए क्लोरोपायरीफास नामक दवा की 4.0 लीटर मात्रा को प्रति हे. की दर से एण्डोसल्फान की 1.5–2.0 लीटर दवा को 700–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

रोगों की रोकथाम

टिक्का रोग

इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर नजर आते हैं। जो बाद में फैलकर सम्पूर्ण पौधे को ग्रसित कर देते हैं। पत्तियों पर गहरे धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में पीले हरे भूरे गोल चकतों में बदल जाते हैं। इन धब्बों की संख्या लगातार बढ़ती जाती है और पत्तियां सूखकर गिरने लगती हैं। इसकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।

रोजेट

यह वायरस द्वारा फैलने वाला रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं। साथ ही उनकी वृद्धि भी रुक जाती है। यह रोग एफिड़ के माध्यम से फैलता है। अतः इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टॉक्स के 0.2–0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

कालर और तना गलन

इस रोग से ग्रसित पौधों के तनों पर गोल व हल्के भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। बाद में यह धब्बे मुलायम होकर सड़ने लगते हैं परिणामस्वरूप पौधा गिर जाता है अन्ततः मर जाता है। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को बुवाई से पूर्व एग्रोसान जी.एन. फफूंदीनाशक की 2.5 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

खुदाई एवं रखरखाव

मूंगफली की बेहतर पैदावार लेने हेतु कटाई उस समय करें जब अधिकांश पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगें। फलियों के छिलके का रंग सुनहरा होने लगे। फलियों में दाने के ऊपर छिलका अधिक चमकदार रंग का हो जाये। अपरिपक्व फलियां अंगुलियों से दबाने पर आसानी से टूट जाती है जबकि परिपक्व फलियां आसानी से नहीं टूटती हैं। उपरोक्त लक्षणों के स्पष्ट होने पर फसल की खुदाई कर लेनी चाहिए। अधपकी फसल को काटने पर पैदावार व तेल की मात्रा और उसकी गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। साथ ही विलम्ब से कटाई करने पर फलियां मिट्टी में रह जाने की संभावना बढ़ जाती है। पकी फसल पर वर्षा होने से फलियों में ही बीज के उगने का अन्देशा रहता है। अतः कटाई समय पर करनी चाहिए। फसल की खुदाई हाथ से पौधों को उखाड़कर या देशी हल चलाकर या कस्सी से करते हैं। कटाई के बाद पौधों को सुखाएं तथा बाद में फलियों को अलग करने के बाद फिर से सुखाएं ताकि उनमें से नमी की मात्रा 9–10 प्रतिशत रह जाए।

उपज

किसान भाई मूंगफली की खेती में उपरोक्त तकनीकों को अपनाकर 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त कर सकते हैं। बीजों के लिए फलियों को अच्छी तरह सुखाएं तथा बीज को फली के अन्दर ही रहने देना चाहिए। मूंगफली का भंडारण 70 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता व 8 प्रतिशत नमी से कम पर ही करना चाहिए।

(लेखक सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं।)
ई–मेल : bandla_gan @ hotmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो (Krutidev 010 CD में) और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख वरिष्ठ संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

हिमालय में कैंसररोधी जड़ी-बूटियां

डॉ. मायाराम उनियाल

इस लेख में हिमालय की औषधि संपदा में विद्यमान कैंसररोधी वनस्पतियों के बारे में बहुमूल्य जानकारी दी गई है। इन वनस्पतियों से लाभ उठाने के लिए गहन अनुसंधान की आवश्यकता हैं। सबसे पहले इन औषधियों का संरक्षण करके इन्हें लुप्त होने से बचाना होगा और कैंसर रोगियों के लिए दुष्प्रभाव रहित दवा बनाने का एकजुट प्रयास करना होगा। इन जड़ी-बूटियों की संरक्षण योजनाओं से हिमालय के पर्यावरण की भी रक्षा हो सकेगी। प्राचीनकाल से ही आयुर्वेद के जानकारों ने इन जड़ी-बूटियों की जानकारी पाने के लिए बहुत से प्रयोग किए है।

कैंसर विश्व में मानव शरीर की कोशिकाओं में असामान्य वृद्धि के फलस्वरूप होने वाला हृदय रोग के बाद दूसरा भयंकर रोग है। वातावरण में असंतुलन, व्यस्त जीवन, आधुनिक रहन–सहन के तरीकों तथा बढ़ता हुआ औद्योगीकरण इसके मुख्य कारण हैं। असन्तुलित खानपान भी इसका एक कारण है। अनेक देशों की प्रयोगशालाओं में इसकी औषधियों की खोज की जा रही है और वैज्ञानिक विकल्प खोजने में व्यस्त हैं। भारत में भी वह प्रक्रिया चल रही है और इस बात का महत्व समझा जा सकता है कि हिमालय वनौषधियों का अथाह भण्डार है। चरक सूत्र अध्याय 1/51 में कहा गया है– **"हिमवानौषधि भूमिनाम्"** अर्थात् हिमालय गुणकारी औषधि भूमियों में श्रेष्ठ है। इतना ही नहीं आरोग्य के लिए हिमालय में उत्पन्न औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

आदिकाल से आयुर्वेद के जानकारों ने जड़ी–बूटियों का परिचय पाने के लिए अपनी प्रयोगशालाओं में अनेक प्रयोग किए हैं। साथ ही वनचरों एवं पशुपालकों का भी उपयोग किया है जिनका नित्यप्रति जड़ी–बूटियों के संकलन एवं प्रयोग से संबंध रहता है। आजकल कैंसर के क्षेत्र में निरंतर अध्ययन किया जा

वन्यकर्कटी

रहा है और ऐसी वनस्पतियों की खोज हो रही है जोकि दुष्प्रभाव रहित हो। प्रस्तुत शोध आलेख में उत्तराखण्ड हिमालयी क्षेत्र में पाई जाने वाली कैंसर चिकित्सा में प्रयुक्त की जा सकने वाली लोक प्रचलित वनोषधियों का विवरण दिया गया है। ये सभी औषधियां दुर्लभ हैं तथा लुप्तप्रायः होती जा रही हैं। इसके निर्यात पर प्रतिबन्ध है। इन संकटापन्न जड़ी–बूटियों के संरक्षण एवं कृषिकरण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। इन जड़ी बूटियों का परिचय इस प्रकार हैः–

प्रचलित नाम – वनककड़ी

आकृतिक वर्णन– बहुवर्षीय शाक, 2 से 3 फुट तक लम्बा मूल ग्रिन्थिल, विशेष गन्ध वाला, अन्दर से पीताभ रंग का, गोलाकार, तीन भागों में खण्डित, पुष्प प्याले के आकार का, सफेद रंग का फल मांसल, अण्डाकार एवं रक्त वर्ण के बीज मटर सदृश गोल, संख्या में 15 से 20, फलों की पत्तों को मसलने पर ककड़ी सदृश गन्ध होती है। इसका पुष्पकाल मई–जून हैं। फल अगस्त–सितम्बर में आते हैं।

प्रयोग– इसकी जड़ एवं गांठ काम में आती है। इसके अर्क से पोडोफाईलिन तथा पोडोपाईलोटोक्सिन सक्रिय तत्व प्राप्त किए गए हैं जिसमें ट्यूमर एवं कैंसर– रोधी गुण पाए गए है।

प्राप्ति स्थान– यह उत्तराखण्ड की पहाड़ियों में 2900 मीटर से 3600 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः खरस् (ओक) के वृक्षों के नीचे पाया जाता है।

औषधीय गुण– यह रक्तशोधक, पित्त विरेचक, यकृत उत्तेजक है। यह कोष्ठबद्धता में उपयोगी एवं त्वक् रोग तथा अर्बुद की भांति कोशावृद्धि में उपयोगी है। ग्रामीण लोग इसकी जड़ को घिसकर दूषित घावों पर लगाते हैं।

खाद्य– स्थानीय लोग इसका लाल फल खाते हैं। इन फलों से भोटिया लोग छंग (मद्य) भी बनाते हैं।

प्रचलित नाम– आमील, अम्लवेतस

इसे स्थानीय भाषाओं में आमील आमीण, गढ़वाल में चूक, अमीस कुमांऊ में चूं, पंजाबी में चुमा कहा जाता है।

आकृतिक वर्णन–कांटेदार सदाहरित, छोटा वृक्ष तना 15 से 20 फीट लम्बा, शाखीय, पर्ण एकान्तर, लट्वाकार, दीर्घायत एवं आरोमिल, पुष्प कक्षीय, हरित, पीताभ, फल रसदार, स्वाद में अम्ल। इसका पुष्पकाल मार्च से अप्रैल तक है। फल जुलाई अगस्त में आते हैं।

प्रयोग– इसके फल तथा छाल काम में आती है। इसका फल फेफड़ों की खराबी में प्रयुक्त होता है। स्थानीय लोग इसके फलों की चटनी बनाते हैं। छाल का उपयोग अमाशयी व्रर्णों के उपचार

के लिए उपयोगी माना जाता है। फल स्वरस में कतिपय जीवनीय तत्व पाये जाते हैं। यह उत्तम रसायन है।

प्राप्ति स्थान– यह हिमालय में 2800 से 3500 मीटर तक पाया जाता है।

प्रचलित नाम– रतनजोत

इसे स्थानीय भाषा में रतनजोत या लालजड़ी कहते हैं।

आकृतिक वर्णन– बहुवर्षीय, गांठदार शाक, पत्र मूलज, पुष्प गुलाबी, बैंगनी, रंग के, मूल, लाल, 5 से 6 इंच तक लम्बी। इसका पुष्पकाल जुलाई, अगस्त है।

प्रयोग– इसकी पत्तियां, फूल और जड़ प्रयोग की जाती है। पत्तियों का चूर्ण बच्चों के कोष्ठबद्धता में दिया जाता है। पुष्प का प्रयोग हृदय रोग में एवं वात् व्याधि में किया जाता है। स्थानीय लोग जड़ को घिसकर त्वचा की बीमारियों के उपचार के लिए प्रयुक्त करते है। इसकी जड़ का प्रयोग गंजेपन को दूर करने के लिए भी किया जाता है। इसके मूल में कैंसररोधी तत्व पाया जाता है।

प्राप्ति स्थान– यह हिमालय में 3000 से 4000 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है।

प्रचलित नाम– लालजड़ी

स्थानीय भाषा में इसे लालजड़ी कहते हैं।

आकृतिक वर्णन– बहुवर्षीय गांठदार, शाक, डण्ठल–पुष्पदण्ड सहित 8 से 18 इंच तक लम्बा, पत्रमूलज 6 से 8 इंच तक लम्बे भालाकार दीर्घायत, पुष्परोमिल, बैंगनी, नीले रंग का, मूल लाल रंग की। इसका पुष्पकाल जून से जुलाई तक है।

प्रयोग– इसकी जड़ काम में आती है। यह गले एवं जिव्हा के रोगों में लाभदायक बताया गया है। ग्रामीण लोग मूल का उपयोग चोट लग जाने पर लेप के रूप में करते हैं। मूल में कैंसर विरोधी तत्व पाये जाते हैं।

प्राप्ति स्थान– हिमालय में 3000 मीटर से 4000 मीटर तक अल्प मात्रा में पाया जाता है।

प्रचलित नाम– मंजीठ

स्थानीय भाषा में इसे मंजीठ, मंजीठी, चटकुरा कहते हैं।

आकृतिक वर्णन– बहुवर्षीय आरोही या विसर्पी क्षुप, शाखा त्रिकोणीय चिपचिपा पुष्प पीताभ, गुलाबी, मूल, रक्ताभ धारीदार होते हैं।

प्रयोग– इसकी मूल का प्रयोग रक्त शोधक व त्वचा रोगों में किया जाता है। यह बलवर्धक के रूप में प्रयुक्त होता है। इस के डण्ठल का प्रयोग सर्पदंश व बिच्छू के काटने में किया जाता है। ग्रामीण लोग मूलक्वाथ का प्रयोग प्रदर में करते हैं। यह फोड़े व फुंसी एवं सौन्दर्य प्रसाधन में उपयोगी होता है।

प्राप्ति स्थान– यह 1200 मीटर से 2900 मीटर तक की ऊंचाई पर हिमालय के कई स्थानों पर पाया जाता है।

प्रचलित नाम– कड़वी बूटी, कडू

स्थानीय भाषा में इसे कड़वी बूटी के नाम से जाना जाता है।

आकृतिक वर्णन– बहुवर्षी शाक, डण्ठल 2 से 3 फुट लम्बा, पत्र 4 से 5 इंच तक लंबे दन्तुर सवृन्त मूल, स्वाद में तिक्त, मुण्डक, सफेद गुलाबी रंग के। इसका पुष्पकाल अप्रैल व मई है।

प्रयोग– इसकी मूल के क्वाथ का प्रयोग ग्रामीण लोग तीव्र उदरशूल में वेदना शामक के रूप में करते हैं। आमाशयिक व्रण में उपयोगी मानते हैं।

प्राप्ति स्थान– यह हिमालय में 2000 मीटर से 3000 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है।

प्रचलित नाम– लद्दाखी तस्क्या

इसे स्थानीय भाषा में लद्दाखी तस्क्या कहते हैं।

आकृतिक वर्णन– सुगन्धित क्षुप पत्र रोमिल, पत्रक 13 से 13 तक, पुष्प 1 से 3 इंच लम्बे वृन्त में, पुष्पकाल मई से जून, पुष्प गुलाबी रंग के।

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग

पूर्वी खंड-4, तल-7

रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

प्रयोग– इसका प्रयोग क्वाथ उदर की बीमारियों में किया जाता है। यकृत, फुफ्फुस एवं अमाशयिक व्रणों में क्वाथ का उपयोग किया जाता है। कैंसर में भी उपयोगी मानते है।

प्राप्ति स्थान– यह हिमालय के विशेष रूप से लद्दाख की स्पीति में 3600 मीटर से 4500 मीटर तक की ऊंचाई तक अल्प मात्रा में पाया जाता है।

प्रचलित नाम– अमली

इसे स्थानीय भाषा में अमली एवं यूनानी में अन्जुवार कहते हैं।

आकृतिक वर्णन– आरोमिल, उर्ध्व स्थित, शाक, डण्ठल, 2 से 3 फुट लम्बा पत्र, लट्वाकार, ह्रदयाकार एवं सवृत्त, पुष्प मन्जरी, श्वेत, रक्त वर्ण की, मूल गांठदार भीतर से लालिमा लिए हुए इसका पुष्पकाल मई जून है।

प्रयोग– इसकी मूल का क्वाथ एवं चूर्ण रक्तज बीमारियों में ग्रामीण करते हैं।

प्राप्ति स्थान– यह हिमालय में 1500 मीटर से 2900 मीटर तक बहुतायत में पाया जाता है।

कैंसररोधी तथा क्रिया करने वाली ये हिमालय की महत्वपूर्ण वनौषधियां है। हिमालय की वनौषधियां सम्पदा में विद्यमान कैंसरनाशक गुणों का लाभ उठाने के लिए इस क्षेत्र में गहन अनुसंधान करने की आवश्यकता हैं। साथ ही इन्हें एक दुष्प्रभाव रहित कैंसर औषध बनाना और हिमालयी क्षेत्र में ही इन महत्वपूर्ण औषधियों का संरक्षण कर इनको लुप्त होने से बचाना। इस प्रयास से हिमालय की सुरक्षा हो सकेगी। इस विश्वव्यापी घातक रोग में कैंसररोधी जड़ी–बूटियां उत्तराखण्ड में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उत्तराखंड में कैंसर रोधी थुनेर, तालीस पत्र के वृक्ष पाये जाते है। इसके उपयोगी तत्व को टैक्सोल कहते हैं।

आजकल व्यावसायिक खेती में मिट्टी के नमूनों के परीक्षणों से पता चला है कि हानिकारक विषैले तत्व धरती में अन्न नहीं अब कैंसर उगलने लगे हैं। विषैले खादों एवं कीटनाशी रसायनों के कारण अन्न प्रदान करने वाली धरती अब कैंसर उपजाने लगी हैं। सीवर एवं औद्योगिक क्षेत्रों के निकट स्थित खेतों की मिट्टी के नमूनों की जांच में कैंसर सहित भयंकर बीमारी पैदा करने वाले तत्व लेड, कैम्बियम, कैडमियम और आर्सेनिक की मात्रा मानक से एक हजार गुना तक अधिक मिली है। इन तत्वों में अधिकता से सब्जियां तो खूब चमकदार दिखती हैं मगर रोगों को सीधा आमंत्रण देती हैं।

जैविक खेती के लिए देशभर में काम कर रहे राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र के शोध में यह चौंकाने वाले आंकड़े सामने आए हैं। सीवर तथा औद्योगिक क्षेत्रों के पास स्थित खेतों की मिट्टी के 150 नमूनों की जांच में मिट्टी में कैंसरजनक खतरनाक तत्वों की मौजूदगी मानक से 1000 गुना पाई गई। उपनिदेशक डॉ. डी कुमार के मुताबिक नमूनों में निकिल दस गुना, लेड दस से 1000 गुना, क्रोमियन चौदह गुना, मरकरी एक हजार गुना और कैडियम अस्सी गुना ज्यादा मिला। जिन खेतों से ये नमूने लिए गए उनमें सीवर का पानी और फैक्ट्रियों से निकला जल या तो सिंचाई के काम आता है या ज्यादातर सब्जियां उगाने में प्रयुक्त किया जाता है। नतीजतन हानिकारक तत्व मिट्टी में पहुंच सब्जियों द्वारा मानव शरीर में पहुंच रहे हैं। जो कैंसर, हार्ट अटैक, श्वास एवं हड्डी सम्बन्धी बीमारी और नपुंसकता को बढ़ाते हैं।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जैविक खेती से उत्पादित आहार–विहार आरोग्य दे सकता है। अतः कृषकों को इस और विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है।

(लेखक जड़ी–बूटी एवं सगंध पादप उत्तराखंड में निदेशक सलाहकार हैं।)

पाठकों / लेखकों से अनुरोध

आप "कुरुक्षेत्र" पत्रिका के नियमित पाठक/लेखक हैं तो आप जरूर चाहेंगे कि आपके गांव या उसके आसपास आ रहे बदलाव के बारे में सभी लोगों को पता चले।

आपके गांव या आसपास जरूर ऐसी कोई महिला/पुरुष या स्वयंसेवी संस्था होगी जिसके बूते पर बदलाव की ब्यार चली हो। सरकारी प्रयासों के चलते भी आपके गांव का कुछ कायापलट तो हुआ ही होगा।

अगर आपके पास ऐसी कोई भी जानकारी है तो आप उसे अपने शब्दों में लिखकर (फोटो सहित) भेजें। लेख छपने पर उसका उचित पारिश्रमिक भी दिया जाएगा। हमारा पता है – वरिष्ठ संपादक, कुरुक्षेत्र (हिंदी), कमरा नं. 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110001

आप हमें लेख ई–मेल भी कर सकते हैं।

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

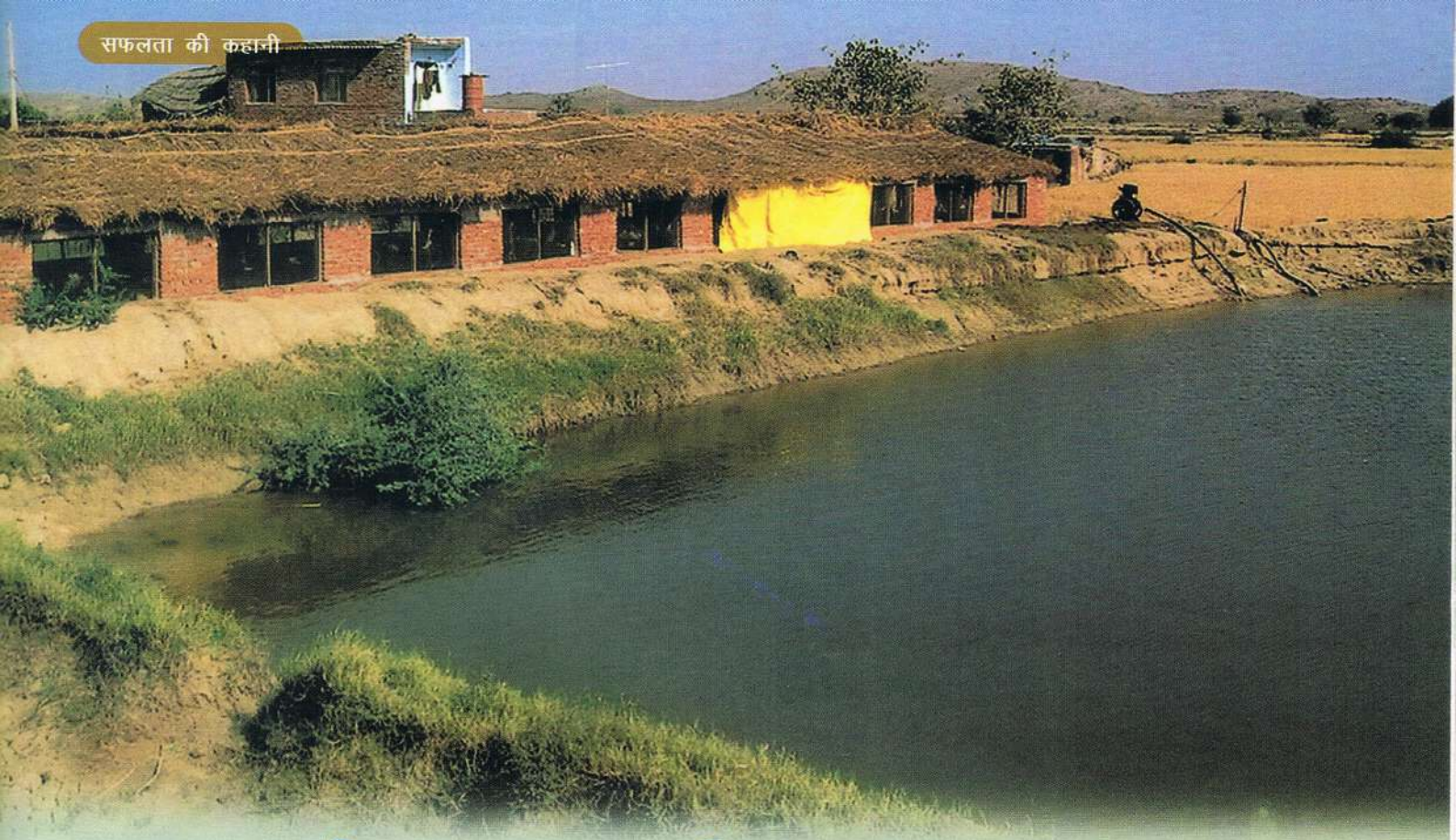

खुशीराम बना गांव की खुशहाली का जनक

रामचरण धाकड़

खुशीराम द्वारा शुरू किए गए रोजगारपरक कार्यों से खेरिया जाट गांव के परिवार को गांव में ही रोजगार मिल गया। अन्यथा ये लोग अब तक पत्थर खदानों में मजदूरी कर बड़ी मुश्किल से जीवन बसर कर रहे थे। लेकिन जब से गांव में खुशीराम ने दरी बुनाई, तुलसीमाला निर्माण, मुर्गीपालन जैसे कार्य शुरू किए हैं तो इन लोगों को पूरे वर्ष रोजगार का कार्य मिल गया है। अब प्रयास यह किया जा रहा है कि ये लोग भी अपना स्वयं का रोजगार संचालित करें जिसके लिए वित्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जा रही है।

राजस्थान के भरतपुर जिले के दूरदराज में बसे खेरिया जाट के निवासियों को इस बात का बिल्कुल आभास नहीं था कि गांव का एक साधारण–सा पढ़ा–लिखा युवक खुशीराम उनकी खुशहाली का जनक बनकर गरीबी के अभिशाप से मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध होगा। वैसे खुशीराम की कार्यक्षमता का पता तो उसके छात्र जीवन से चल गया था जब उसने मात्र 14 वर्ष की आयु में आठवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की लेकिन पारिवारिक परिस्थितियों ने उसे आगे नहीं पढ़ने दिया और वह अपने पिता के साथ खेती के व्यवसाय में जुट गया।

दृढ़ इच्छाशक्ति और मार्गदर्शन बना सहायक

भरतपुर जिले की रूपवास पंचायत समिति के उत्तरप्रदेश की सीमा से सटे खेरिया जाट के लगभग सभी लोग खेती अथवा मजदूरी कर अपना जीवनयापन करते आ रहे थे। पारम्परिक खेती से केवल वे अपने परिवार जनों को दोनों समय का भोजन मुहैया कराते थे। परिवार की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साहूकार से ऋण लेना पड़ता था। गांव में गरीबी इस कदर पसरी हुई थी कि बीमार आदमी इलाज के अभाव में दम तोड़ देता था। गांव में खुशीराम एक ऐसा उत्साही नवयुवक था जिसे कुछ नया करने की इच्छा रहती। उसने लुपिन लिमिटेड औद्योगिक घराने की स्वयंसेवी संस्था लुपिन ह्यूमन वेलफेयर एण्ड रिसर्च फाउंडेशन के सहयोग से गांव में ही मुर्गीपालन, तुलसीमाला निर्माण, दरी बुनाई, मछलीपालन आदि का गहन प्रशिक्षण लिया और जिन स्थानों पर ये व्यवसाय संचालित हो रहे थे उनका मौके पर जाकर अवलोकन भी किया।

खुशीराम ने प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद लुपिन एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं के सहयोग से दस लाख रुपये का ऋण लेकर अपनी 10 बीघा जमीन पर मुर्गीपालन के लिए शेड बनवाया, मछलीपालन के लिए तालाब खुदवाया और एक छोटा शेड दरी

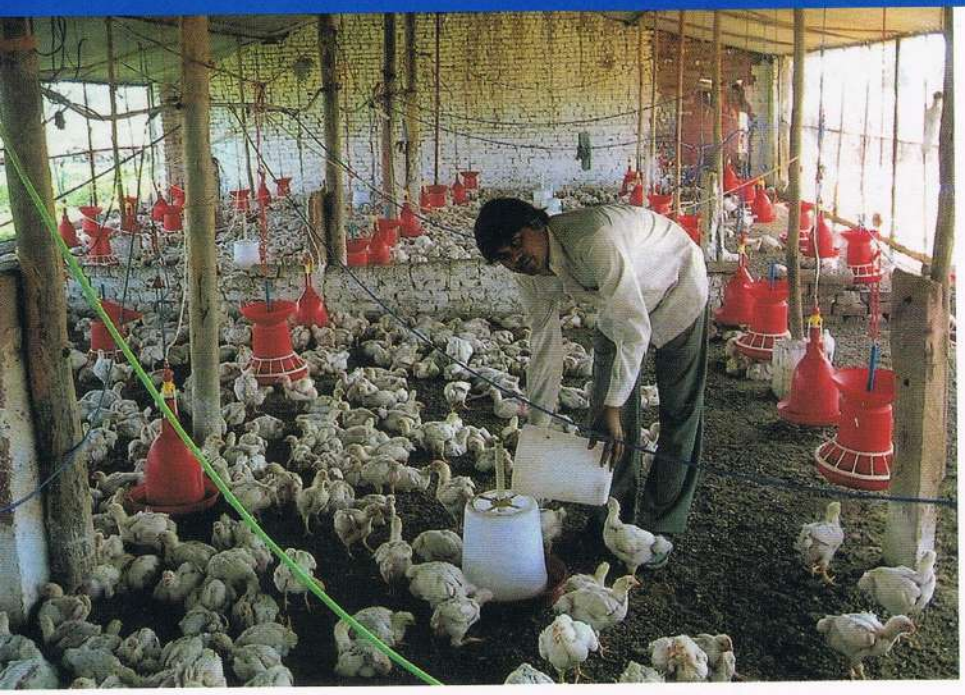

चूजों को दाना खिलाता खुशीराम

निर्माण के लिए तैयार करवाया। जब यह कार्य सम्पन्न हो गया तो उसने मुर्गीपालन, मछलीपालन, बत्तखपालन व बागवानी के अलावा दरी निर्माण, वर्मी कम्पोस्ट, आटा चक्की संचालन व तुलसीमाला निर्माण का कार्य शुरू किया जिसमें गांव के ही करीब 10 परिवारों के 25 युवक–युवतियों को रोजगार मुहैया कराया। इन सभी कार्यों से खुशीराम को प्रतिमाह 8 से 10 हजार रुपये की आय होने लगी तो उसके उत्साह का कोई ठिकाना नहीं रहा।

फोन पर ही होने लगी बुकिंग

खुशीराम ने सबसे पहले मुर्गियों के 500 चूजे लाकर मुर्गीपालन का कार्य शुरू किया जिससे हुई आमदनी से उत्साहित होकर खुशीराम ने इनकी संख्या दुगुनी कर दी और धीरे–धीरे बढ़ाकर 6 हजार चूजे पालन प्रारम्भ कर दिया। खुशीराम को वयस्क चूजे बेचने में कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि जब चूजे 45 से 60 दिन के हो जाते तो इन्हें आगरा, दिल्ली अथवा अलीगढ़ के बाजारों में बेच आता। जिससे एक चूजे पर आसानी से 15 रुपये की बचत हो जाती। धीरे–धीरे खुशीराम की पैंठ बाजार में जमने लगी और स्थिति यह हो गई कि खुशीराम का सौदा फोन पर ही होने लगा। खुशीराम को अब अपना सामान बेचने के लिए बाजार नहीं जाना पड़ता बल्कि खरीददार स्वयं ही उसके घर आते और सामान खरीद ले जाते।

खुशीराम को जब यह जानकारी मिली कि जो दरियां वह तैयार कर रहा है उसमें यदि नवीन तकनीकी एवं बाजार की मांग के अनुरूप डिजाइनों का समावेश किया जाए तो उसे अधिक बचत हो सकती है। जिसके लिए उसने निकटतम दरी उत्पादन केन्द्र फतेहपुर सीकरी से सम्पर्क किया जहां से उसे नवीनतम डिजाइन तैयार करने की जानकारी मिली। इसी डिजाइन के आधार पर उसने दरियां तैयार कर बाजार में बेचना शुरू किया तो उसकी आमदनी दुगुनी हो गई। ऐसी ही स्थिति विदेशी नस्लों की बत्तख पालन के दौरान हुई। इन बत्तखों की बिक्री में उसे परेशानी होने लगी तो उसने आगरा जाकर होटलों में सम्पर्क किया जहां उसे पता लगा कि विदेशी नस्ल की बत्तखों और उनके अण्डों की भारी मांग है। जिसे देखते हुए उसने इन बत्तखों की संख्या में वृद्धि की और अब विदेशी नस्ल की बत्तखों का अण्डा पांच रुपये प्रति अण्डे की दर से बेच रहा है।

आधा दर्जन गांव में शुरू हुए रोजगार के कार्य

खुशीराम को मुर्गीपालन, मछलीपालन व अन्य कार्यों से हुए लाभ को देखकर इस क्षेत्र के चैंकोरा, पाण्ड्री, श्रीनगर, खानसुरजापुर, बरवार, तेजनगर व भिडियानी में मुर्गीपालन व अन्य कार्य शुरू हुए हैं। इसके अलावा लुपिन संस्था ने भी प्रत्येक पंचायत समिति में खेरिया जाट गांव की तर्ज पर एक अथवा दो गांव विकसित किए हैं ताकि इन गांवों को देखकर ग्रामीण अपने यहां भी इसी तरह के स्वरोजगार के कार्य शुरू कर सकें। ऐसा ही गांव कुम्हेर पंचायत समिति क्षेत्र में बौरई विकसित किया गया है जहां एक किसान सोहन सिंह ने अपने खेत पर नवीन तकनीक पर आधारित डेयरी, गोबर गैस, दुग्ध संकलन केन्द्र, परम्परागत गर्भाधान केन्द्र आदि शुरू किए हैं। इस किसान की भी आमदनी प्रतिमाह 8 से 10 हजार रुपये तक पहुंच गई है। इसी तरह अन्य गांव भी विकसित किए गए हैं।

खुशीराम की तरह पूर्ण लगन, मेहनत एवं नवीन तकनीक को शामिल करते हुए स्थानीय आवश्यकता पर आधारित रोजगारपरक कार्य शुरू किए जाएं तो निश्चय ही गांव एवं गरीबों की तस्वीर बदलेगी और खुशहाली गांव में प्रवेश कर लोगों के आर्थिक स्तर में निश्चय ही बदलाव लाएगी।

(लेखक सूचना केन्द्र, भरतपुर में कार्यरत हैं।)

हमारे आगामी अंक

अगस्त, 2009–बदलते परिवेश में पंचायतों की भूमिका।

सितम्बर, 2009– खाद्य सुरक्षा।

अक्टूबर, 2009– ग्रामीण अर्थव्यवस्था–विकास की नई शक्ति (विशेषांक)।

नवम्बर, 2009– ग्रामीण ऋण व्यवस्था।

दिसम्बर, 2009– नरेगा–नए कदम, विषयों पर आधारित होंगे।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि, रोजगार व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से तीस दिन पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री कम से कम 45 दिन पूर्व हमें मिल जानी चाहिए।

तेरह भारतीय भाषाओं में हमारी पुस्तकें

क्षेत्रीय सुगंध से महकता गुलदस्ता

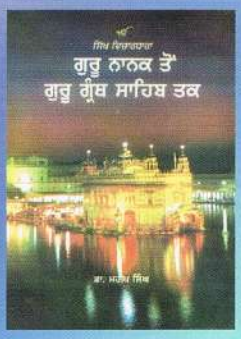

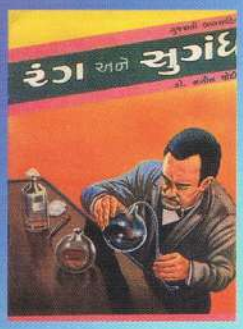

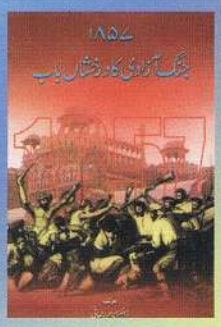

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली

विक्रय केंद्रः सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, **नई दिल्ली**–110 003. हाल नं0 196, पुराना सचिवालय, **दिल्ली**–110 054. सी–701, केंद्रीय सदन, बेलापुर, **नवी मुंबई**–400 614. 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, **कोलकाता**–700 069. राजाजी भवन, एफ एंड जी ब्लॉक, 'ए' विंग बेसेंट नगर, **चेन्नई**–600 090. बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, **पटना**–800 004. प्रेस रोड, निकट गवर्मेंट प्रेस **तिरुअनंतपुरम**–695 001. हाल नं.1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, सेक्टर–एच, अलीगंज, **लखनउ**–226 024. ब्लॉक नं. 4, गृहकल्प कॉम्प्लेक्स, एम.जे. रोड, नामपल्ली, **हैदराबाद**–500 001. प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, **बंगलौर**–560 034. अम्बिका कॉम्प्लेक्स, प्रथम तल, पालदी, **अहमदाबाद**–380 007. हाउस नं. 07, न्यू कालोनी, चेनीकुथी, के.के.बी. रोड, **गुवाहाटी**–781 003.

ज्यादा जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट देखें – www.publicationsdivision.nic.in
e-mail:dpd@sb.nic.in, dpd@hub.nic.in

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2009–11
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2006–08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2009-11
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना